राजकमल कथा साहित्य — १०

# सनसनाते सपने

हास्य-व्यंग्य-प्रधान मौलिक उपन्यास



राधाकृष्ण



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

मूल्य एक रुपया चौदह आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई
मुद्रक—श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली

# एक

: १ :

यों उस घराने का कारोबार, व्यवहार और व्यापार खासा था; पर समीर ने भारतवर्ष और अमेरिका में विद्या पढ़ी थी, इसलिए बेकार हो गया था। व्यापार की बुद्धि कुछ थी नहीं; करें तो आखिर क्या करें ? इसलिए विचार किया कि कविता लिखना ही सर्वोत्तम काम है। वह दिन-रात अपने कमरे में बैठा रहता और कभी छत की ओर आँख लगाकर और कभी आँखों को बन्द करके कविता का भाव सोचा करता था। कभी-कभी तो वह इस तरह की कविताएँ लिख जाता था जो साबर-तन्त्र के मन्त्रों के समान होती थीं। समीर बड़े गर्व से उन्हें प्रयोगवादी कविता की संज्ञा दिया करता था और पूछने पर वह न उसका भाव बतला सकता था और न अर्थ ही। वह कहा करता था कि जिस तरह बिजली करेंट मारती है उसी तरह कविता का भाव भी करेंट की तरह शक्-से आदमी को मर्माहत कर देता है। बिजली की करेंट से आदमी कभी-कभी मर भी जाता है, लेकिन प्रयोगवादी कविताओं से वैसा खतरा नहीं हो सकता।

वह कहा करता था कि कविता में बिजली की जो करेंट होती है वह तीन तरह से आदमी को लगती है—सड़ाक्, पड़ाक् और तड़ाक्। इसमें देखना पड़ता है कि वह जो करेंट है सो किस तरह की है। करेंट की

इन तीनों धाराओं को पकड़ लेने पर वह त्रिफला के समान गुणकारी होती है। यदि इन्हें ठीक से पकड़ा नहीं जा सका तो यह सारा माल-मसाला त्रिदोष उत्पन्न कर देता है। कहना नहीं होगा कि इस तरह की परिभाषा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दी हुई नहीं थी, किसी आलोचक ने भी ऐसा नहीं कहा था; ऐसी बातें समीर स्वयं कहा करता था।

उसकी पत्नी थी शारदा। वह उसकी कविताओं की एकमात्र पाठिका थी। जिस समय समीर उसे अपनी कविताएँ सुनाता उस समय वह बटोही की तरह आँखें फाड़कर सुनती रहती थी। उसकी समझ में कुछ आता-जाता नहीं था; लेकिन यदि वह कह दे कि मैं नहीं समझती तो




हजरत समझेंगे कि यह जानती-वानती कुछ नहीं। फिर अगर कह दिया जाय कि तुम्हारी कविताएँ बोगस हैं, तो एकदम सम्प्रदान-अपादान के समान आपस का मेल नहीं बैठेगा। फलतः शारदा बेचारी कुछ कहती नहीं थी। आँखें फाड़कर कविताएँ सुनती थी, फिर मुँह फाड़कर कह।

उठती थी—"अजी वाह ! वाह ! वाह !"

उसके बाद तो समीर पर जैसे नशा-सा सवार हो जाता था। वह इतने मनोयोग के साथ कविता लिखने में जुटता मानो कोई जरूरी काम कर रहा हो। उस समय वह सिगरेट पीता, चाय और कोको पीता, पानी पीता और किसी-न-किसी प्रकार कविता लिख ही लेता था। अक्सर वह कहा करता था—"शारदा, तुम्हीं मेरी प्रेरणा हो। प्रतिदिन मैं जितनी कविताएँ लिखता हूँ उससे रोज एक संग्रह निकल सकता है।"

उसके बाद शारदा की प्रशंसा की बारी आती। वह अतिशयोक्ति अलंकार का विचार करके कहना शुरू करती—"मैं एक व्यासदेव को मानती हूँ और दूसरे तुम्हें। व्यासदेव ने महाकाव्य लिखे और तुमने कविताएँ लिखीं। बाकी किसी को मैं कवि नहीं मानती।"

"सो कैसे ?" समीर को शारदा की बात में रस मिलता।

शारदा कहना आरम्भ कर देती—"और लोग भी भला कवि कहलाने के अधिकारी हैं ? उनमें मौलिकता तो तनिक भी नहीं। चाहे कालिदास हों या भारवि, नई चीज़ तो उन्होंने दी नहीं। लेकिन तुम्हारी चीजें तो 'ओरिजिनल' हैं—एक पंक्ति एक इंच की तो दूसरी सवा इंच की। कोई-कोई पंक्तियाँ तो उससे भी बड़ी हो जाती हैं। डबल-क्राउन साइज़ में तुम्हारी कुछ कविताएँ अँट नहीं सकतीं। इसके लिए अलग किस्म का कागज ही 'मेनुफेक्चर' कराना पड़ेगा।"

समीर ने उस दिन कुछ गर्व के साथ कहा था—"मेरे विचार भी अलग-अलग पंक्तियों में अलग-ही-अलग हुआ करते हैं। क्यों ?"

शारदा ने लापरवाही से सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"अजी हाँ, फिर और क्या ? इस पंक्ति में आसमान की बात है तो उस पंक्ति में जमीन का भाव है। इसी को कहते हैं आसमान और जमीन एक कर देना। यह काम तो यों हो भी नहीं सकता, केवल कविता के द्वारा ही हो सकता है। अभी एटम-बम की बात कह रहे हैं, फिर हर-हर बम-बम का तुक मिलाकर 'स्ट्रेप्टोमाइसीन' और 'पेनिसिलीन' की बात

कहने लगे। विज्ञान और काव्य, अर्थशास्त्र और पिंगल का अच्छा जुटान तुमने जुटाया। वाह, तबियत खुश हो जाती है। अगर मेरे हाथ की बात होती तो इस साल का 'नोबल-प्राइज़' तुम्हें ही दिलवा देती। बला से, दुनिया वाले कहते कि अपने रिश्तेदारों के साथ पक्षपात किया जाता है। मगर मुझे इसकी परवाह थोड़े ही होती।"

समीर ने सुनकर इस प्रकार मुँह बनाया मानो शारदा जो कह रही है वह जरूर ही कोई गम्भीर बात है। वह उसे प्रसन्न करने के लिए कहता था—"यदि कोई गाकर पढ़ना चाहे तो उसमें भी मेरी चीज़ कम नहीं। लोग इन्हें गाकर भी पढ़ सकते हैं।"

शारदा ने कहा—"अजी, इसी दृष्टि से तो मैंने तुम्हारी कविताओं को देखा है। कविता भले ही न जानूँ, लेकिन गाना-वाना तो कुछ जानती ही हूँ। तुम्हारी कविता गाने में बड़े-बड़े गवैयों का भी पसीना छूटने लगे। कोई मज़ाक थोड़े है! एक पंक्ति भूपाली है तो दूसरी केदारा, तीसरी ईमन और चौथी मालकोश। फिर पाँचवीं और सातवीं पंक्ति एकदम गद्य में कही गई है। एकदम ठोस भाव—चरम गद्य और परम पद्य। भीख माँगने वाले मुसलमान साईं जिस तरह की अपनी गुदड़ी सिलवाते हैं उसी प्रकार हर एक भाव की रंगीनियों के साथ तुम्हारी कविताएँ रहा करती हैं।"

यह उपमा समीर को पसन्द नहीं आई, पर शारदा का जो भाव था वह पसन्द आ गया। वह कहने लगा—"कविता का सम्मान यहाँ कहाँ? मैंने अमेरिका में देखा था कि एक कवि अपनी कविता पढ़ने को था तो लोग उसके लिए टिकट बेच रहे थे। यहाँ वह बात नहीं।"

शारदा बोली—"अजी, छोड़ो भी, यह हिन्दुस्तान है। यहाँ लोग रेस का घोड़ा देखने के लिए टिकट का दाम खर्च करते हैं, लेकिन कवि को देखने के लिए कौन टिकट लेता है? यह वही देश है जहाँ महात्मा गांधी जैसे आदमी को लोगों ने गोली मार दी थी। कभी-कभी तो मैं ऐसा भी सोचने लगती हूँ कि कहीं कोई तुम्हें ही गोली न मार दे।"

समीर ने सोचते हुए कहा—"ऐसे अहमक देश में ऐसा भी हो सकता है कि कोई मेरे प्रयोगों को समझे नहीं और क्रोध के आवेश में मुझे गोली मार दे। मैं कहता हूँ न कि प्रयोगवादी कविताएँ झटका देती हैं; सड़ाक्, पड़ाक् और तड़ाक् से बिजली की करेंट की तरह चोट मारती हैं।"

ऐसी बात आ जाने पर समीर कुछ चिन्तित भी हो जाता था और अपनी आँखें झुकाकर जैसे उस भविष्य को सोचने लगता था जब उसकी कविताओं के मोटे-मोटे ग्रन्थ पढ़कर लोग मोटी-मोटी लाठी लिये हुए घूम रहे हैं।

मगर शारदा इस बात को कुछ दूसरे ही रूप में लेती थी। कहती थी—"इसी से कहती हूँ कि यह देश दूसरा है। यहाँ कविता चलती नहीं। मेरी तो सलाह है कि कोई दूसरा काम किया करो।"

परन्तु समीर को शारदा की यही सलाह नहीं भाती। उसने कहा था—"अब तो जो होगा इसी कविता से ही होगा।"

शारदा और समीर की ये बातें आसानी के साथ सुना दी गईं, लेकिन वह अपनी सखियों के सामने जो कहा करती थी उसे कहते हुए भय मालूम होता है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस बात को अपने तक ही सीमित रखें। शारदा को मालूम हो जाने से वह बुरा मान लेगी। समीर भी इस बात पर विश्वास नहीं करेगा, उल्टे कहीं दुश्मन न हो जाय। जो भी हो, अपने सखी-समाज में शारदा समीर की कविताओं की खूब खिल्ली उड़ाया करती। वह कहा करती थी—"अंग्रेजी में एक कवि हैं मिस्टर इलियट, हिन्दी में दूसरे कवि हैं मिस्टर इडियट!"

और इस बात को सुनकर उसकी सखियाँ इस तरह हँसने लगतीं मानो वहाँ जलतरंग बज रहा हो।

समीर को ये बातें मालूम नहीं थीं। वह शारदा की बातों से सर्वदा प्रभावित रहा करता था। एक दिन उसके मन में आया और उसने कहा—"शारदा, तुम्हारे भीतर भी अगाध प्रतिभा दिखलाई देती है। अगर तुम

भी कोई कविता लिखो तो कैसा रहे ?"

शारदा ने कहा—"नौकरों का वेतन और घर-खर्च का हिसाब तो लिखती ही हूँ, अब कविता क्या लिखूँ ?"

समीर ने आग्रहपूर्वक कहा—"तुम्हें मेरी शपथ ! एक कविता लिखो तो सही !"

शारदा मुँह बनाकर बोली—"छीः, कसम क्यों देते हो ? यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। राम-राम !"

समीर ने हँसकर कहा—"अब तो शपथ की गाँठ पड़ गई, कुछ जरूर ही लिखो।"

शारदा ने कहा—"अच्छी बात है। कल कुछ सुना दूँगी।"

: २ :

वैसे तो संसार का हर आदमी अपने को किसी कवि से कम नहीं समझता, पर शारदा की कविता एक विशेष लक्ष्य और उद्देश्य से लिखी जा रही थी। शारदा का उद्देश्य था कि उसकी ननद सुलेखा की शादी शीघ्र हो जाय। वह इसी महत् उद्देश्य को लेकर कविता लिखने बैठ गई।

यों शारदा के मन में कविताएँ बहुत आया करती थीं, पर जब लिखने के लिए बैठी तो एक भी भाव नहीं सूझा। किसी तरह जोर-जबरदस्ती से भाव और शब्दों की खींच-तान करके उसने कविता लिखी। दूसरे दिन जब घर के सभी लोगों ने खाना खा लिया, तब वह अपनी कविता को आँचल के नीचे छिपाये हुए समीर के पास पहुँची। समीर ने सिर उठाया और प्रश्नसूचक दृष्टि से शारदा की ओर देखा।

शारदा ने अपनी लाज को दूर करते हुए कहा—"अप-टु-डेट तो मैं हूँ नहीं, पुराने टाइप की गृहिणी हूँ, इसलिए मेरी कविता में तुम्हें पुरानापन ही मिलेगा।"

समीर ने उत्सुक होकर कहा—"तनिक सुनाओ तो सही !"

शारदा ने कहा—"लो, सुनो !"

शारदा ने बड़ी सावधानी के साथ उच्च स्वर से उस कविता को पढ़ना आरम्भ किया। बीच-बीच में वह आँख के कोने से यह भी देख लेती कि उसकी कविता का प्रभाव समीर के ऊपर किस तरह पड़ रहा है। उसने जो कविता पढ़ी वह इस प्रकार थी :

*दप्प-दप्प दीपत जहान में महान हैं*
*कि छुरी पै सान हैं कि आँखिन को आन हैं*
*काँध पर कमान हैं तो बात आलीसान हैं !*

*चंचरीक चूँ करी, हाथी हहा करी*
*कहा करी कि सुन-री अरी !*
*तो आँखिन को मूँद मैं कविता सहा करी !*

*ननद की दशा विलोकि, अवलोकि विरह बार-बार*
*अरी जरी, मरी-मरी-मरी मैं तो,*
*हृत्पत्र भयो तार-तार*
*कहती हूँ मैं हजार बार, बार-बार*
*कि जाओ प्रिय, देखो प्रिय*
*समाज में बिकते हैं दूल्हे जहाँ*
*रखने को बहू पास चूल्हे के।*
*दुखने लगें कूल्हे, हो जाओ लूल्हे*
*पर लाओ प्रिय, कुछ दूल्हे*
*कि विवाह दूँ मैं ननद को।.........*

कविता समाप्त भी नहीं हुई कि समीर आवेश में चिल्ला उठा—"यह क्या बकवास है ?"

शारदा सकपकाकर बोली—"क्यों ? कविता ही तो है !"

समीर ने घुड़ककर कहा—"कविता नहीं, बकवास है, हिस्टीरिया है, फिजूल है।"

शारदा ने कहा—"अजी वाह, फिजूल कैसे ? तुमने इस कविता का भाव देखा है ? कविता में भाव ही देखा जाता है।"

"भाव नहीं खाक !" समीर ने कहा, "कुछ भी नहीं है।"

शारदा की समझ में नहीं आ रहा था कि समीर के एकाएक इस तरह बिगड़ बैठने का कारण क्या है। उसने समझा था कि कविता के भाव को देखकर उसके पति भावामुग्ध हो जायँगे, परन्तु यहाँ तो उलटा ही हुआ। इस परिणाम की उसे कदापि आशा नहीं थी। शारदा का मन खीझ उठा। स्वयं कविता लिखते हैं तो मुझे प्रशंसा करनी पड़ती है, मगर जब मैंने लिखी तो झिड़की लगा रहे हैं। बिगड़कर बोली—"कविता तुम्हारी समझ में आती तो है नहीं, उलटे मुझ पर रोब झाड़ रहे हो। तुम कविता में प्रयोग कर सकते हो तो क्या मैं प्रयोग नहीं कर सकती ? असल चीज़ है भाव, सो इस कविता में कितना दिव्य, कितना ऊँचा और कैसा करुण भाव है।........"

समीर ने चिढ़कर कहा—"भाव नहीं खाक !....क्या भाव है इस कविता में ?"

शारदा ने कहा—"कितना सुन्दर है भाव यहाँ ! कवयित्री की ननद की शादी नहीं होती। इससे कविता बनाने वाली का हृत्पत्र तार-तार हो गया है और वह बार-बार अपने प्रिय से निवेदन करती है कि आलस्य छोड़ो और यहाँ से चले जाओ। कहीं से कुछ दूल्हों को पकड़-कर लेते आओ, जिनमें से किसी एक को पसन्द करके प्यारी ननद का विवाह कर दिया जाय।"

सहसा समीर चिल्ला उठा—"शारदा, मुझे घर में रहने दोगी या नहीं ?"

शारदा ने कहा—"तुम इस तरह गरम क्यों होते हो ? कविता का भाव देखो। किस प्रकार करुण होकर इस कविता में भाव दरशाया गया है ?"

समीर सहसा कुरसी पर से उठ गया और अपनी दवात पटक



दी। कविता की पोथियों को फाड़ता हुआ चिल्लाने लगा—"देखा तुमने भाव ? भाव देखो, भाव देख लो !"

शारदा हक्की-बक्की हो उठी। कातर होकर बोली—"ऐसा मेरा भाव नहीं था। मेरा भाव तो केवल इतना ही था कि सुलेखा ननद की शादी........"

समीर प्राणपन से चिल्ला उठा—"बस करो। मैं अब जीवित नहीं रहूँगा। तुमने मेरा अपमान किया है। अब मैं कदापि जीवित नहीं रहूँगा। याद रखना शारदा, आज से तुम विधवा हो !........"

और वह पैर पटकता हवा की तरह कमरे से निकल गया। शारदा सन्न ! उसको समझ में कुछ आता ही नहीं था कि वह क्या करे। यह आदमी तो भाव को देखता ही नहीं। उल्टे मुझ पर बिगड़ बैठा !....

## : ३ :

क्रोध के मारे लपका हुआ समीर सड़क पर चला जा रहा था। उसे यह

भी खयाल नहीं था कि वह पूरब की ओर जा रहा है या पच्छिम की ओर। उसे केवल इतना ही खयाल था कि आज किसी उपाय से जरूर मर जाना है। अगर न मरेगा तो शारदा के सामने झूठा हो जायगा।
........जब वह सोचता कि उसके मर जाने के बाद लोग किस तरह अफसोस करेंगे तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगते। वह डबडबाई आँखों से सोचता कि कौन आदमी उसकी मृत्यु पर क्या कह रहा है। फिर जब उसने कल्पना में देखा कि उसकी लाश को उठाकर लोग लिये जा रहे हैं तो उसकी आँखों से आँसुओं की धारा फूट पड़ी।

चलता हुआ ही वह सैन्डहर्स्ट ब्रिज पार कर गया और चौपाटी पर पहुँचा। वहाँ समुद्र के किनारे एक बैंच पर बैठ गया और सोचने लगा कि किस तरह मरना युक्तियुक्त होगा। जब मरना ही है तो आदमी इस तरह मरे कि दुनिया में नाम हो जाय। अफीम खाकर मरे तो कैसा होगा?........नहीं-नहीं, अफीम कड़वा होता है। न मुझे उसकी गन्ध पसन्द है और न स्वाद। अगर पेट में छुरी घुसेड़ लूँ तो खून बहुत बहेगा और तकलीफ भी होगी। तो अब तकलीफ से क्या मरूँ? आराम के साथ मरना ही ठीक है। अगर धीरे से अपना गला टीप दूँ, तब?........

उसने धीरे से अपने गले को दबाया। इससे कोई फल नहीं हुआ। जब जोर से दबाया तो उसे अपनी साँस घुटती हुई-सी मालूम हुई, आँखें बाहर निकलने लगीं। वह घबरा गया और गला टीपकर मरने का खयाल छोड़ दिया। इससे तो और भी तकलीफ होती है। इस तरह कायर मरते होंगे। मरना है तो 'हीरो' की तरह मरना ठीक है, वरना मरे भी तो क्या मरे! तब शारदा भी कहेगी कि हाँ, मरने वाला मर भी गया और चूँ तक न की।

सहसा समीर वहाँ से उठ गया और चलने लगा। चलते-चलते उसने सोचा कि बिजली को छूकर मरना भी तो अच्छा ही होगा। लाखों रुपये लगते हैं तब जाकर बिजली पैदा होती है। एकबारगी



प्रयोगवादी कविता की तरह झटका लगेगा और सब सन्नाटा। तब उसे खयाल आया कि मरने से पहले मृत्यु नाम की कोई कविता लिखनी चाहिए। उसकी पहली दो पंक्तियाँ इस तरह होंगी :

*मर गया मैं आराम से*
*चारों ओर शान्ति का सन्नाटा है।*

वह सोचने लगा कि कम-से-कम पाँच तोले अफीम खरीदी जाय। उसे पानी में घोलकर पी लिया जाय। उसके बाद हृदय में जैसा-जैसा भाव आए उसे लिखता जाऊँ, लिखता जाऊँ। लिखते-लिखते····कलम की गति क्षीण हो जायगी····अक्षर अधूरे हो जायँगे····उसके बाद····ओह, मृत्यु !·······वह एकबारगी चौंक उठा। उसके शरीर से पसीना छूटने लगा और वह तेजी से समुद्र के किनारे-किनारे जाने लगा। एक बार उसके मन में भय हुआ कि कहीं अपनी ही हत्या के अपराध में लोग उसे फाँसी पर न चढ़ा दें। फाँसी की आशंका से वह घबरा गया। फिर

सँभलकर उसने विचार किया कि यदि ऐसी ही स्थिति आ जायगी तो मैं शपथ खाकर कहूँगा कि मैंने स्वेच्छा से अपनी जान दी थी। तब फाँसी रुक सकती है।.........

वह रुक गया। उसके सामने शान्त और स्तब्ध समुद्र था। पास ही बेंच पर बैठी कोई पारसी लड़की किताब पढ़ रही थी। उसके शरीर पर फ्राक की पोशाक थी और पहली दृष्टि में वह पारसी न मालूम होकर कोई यूरोपियन लड़की मालूम होती थी। सहसा एक भौगोलिक विचार उसके मन में आया। उसने सोचा कि संसार में तीन भाग जल है और एक भाग स्थल है। वह चलने लगा और सोचने लगा कि प्रकृति ने संसार में जो तीन भाग जल बनाया है वह कुछ सोच-समझकर ही बनाया है। कम-से-कम इतना पानी पीने के लिए तो बनाया नहीं। फिर ? उसने विचार किया कि इतना पानी जरूर ही डूबकर मरने के लिए बनाया गया है। पानी तरल है, शीतल है, रेशम के समान मुलायम है; अगर मरना हो तो आदमी पानी में ही डूबकर मरे। इसमें हर तरह का आराम है। मरते समय किसी को पानी देने के लिए बुलाना भी नहीं पड़ता। गटागट आदमी पानी पीता जाता है और मरता जाता है। फिर छलाँग मारकर मरना भी ठीक नहीं। तैरते-तैरते मरने में थकावट आती है, हाथ-पैर निश्चेष्ट होने लगते हैं। आदमी को इस तरह मरना उचित है कि वह धीरे-धीरे पानी में इस तरह घुसता चला जाय जिस प्रकार भक्त इष्टदेव के मन्दिर में प्रवेश करता है। उसके बाद उस जल-मन्दिर में घुसकर अपने इष्टदेव में ही लीन हो जाय।

इस तरह सोचने में उसे बड़ी शान्ति मिली। वह इतिहास के बारे में सोचने लगा। सीज़र, नेपोलियन, अशोक, समुद्रगुप्त सभी आये और मर गए; अब केवल एक वही जीवित है। जीवित रहकर होता ही क्या है ? जीवित रहने के बाद केवल मरना ही होता है। जब मरना होता ही है तो फिर ? वह रुक गया और अंकगणित के अनुसार जीवन में

से मृत्यु को घटाने लगा। मगर उसने मृत्यु का अंक रखा था १०० और जीवन का अंक रखा था केवल १; सो उस एक में से एक सौ किसी तरह घटता ही नहीं था। फिर जब उसने एक सौ में से एक को घटाया तो बड़ी आसानी से घट गया। तब उसे बड़ी प्रसन्नता मालूम हुई। सौ में से एक घटाने से ९९ बच जाता है। इसी को लोग ९९ का फेर कहते हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार उसने विचार किया कि जीने में अर्थ बहुत व्यय होता है, लेकिन मर जाने पर केवल श्राद्ध में ही अर्थ को व्यय करना पड़ता है। इस तरह अर्थशास्त्र के हिसाब से भी मरना ठीक है। 'स्टाक-एक्सचेंज' के हिसाब से जीवन एक स्टाक है और मृत्यु एक्सचेंज है। जीवन और मृत्यु को एक साथ मिलाने पर वह स्टाक-एक्सचेंज होता है।

कहा नहीं जा सकता कि समीर किधर-से-किधर होते हुए किधर चला जा रहा था। सहसा उसने देखा कि एक आदमी सर्ज का सूट पहने हुए समुद्र के किनारे इस तरह विभोर खड़ा है जिस प्रकार भक्त देव-मन्दिर के सामने स्तब्ध खड़ा रहता है। उसे देखते ही समीर का हृदय द्रवित हो उठा। उसने सोचा कि यह आदमी मरने के लिए ही इस तरह पानी के किनारे खड़ा है। यह धीरे-धीरे पानी में घुसेगा, घुसता जायगा, घुसता जायगा.......और तब अपने इष्टदेव में लीन होकर अनन्त जलमय हो जायगा। समीर चौंक उठा। उसने सोचा कि इस आदमी को बचाना होगा। आत्महत्या अच्छी चीज़ नहीं। चाहे जो हो, इस आदमी को मृत्यु से बचाना ही होगा। वह झपटता हुआ उस आदमी के पास गया और पीछे से पुकारा—"ओ मिस्टर !"

वह आदमी एकाएक घूम गया और समीर को देखते ही प्रसन्नता से चहक उठा—"हल्लो.......मिस्टर समीर !"

दोनों आदमियों ने परस्पर हाथ मिलाया। वह आदमी समीर का मित्र था।

समीर ने पूछा—"तुम यहाँ कैसे पहुँचे, प्रभात ?"

प्रभात ने कहा—"आजकल मैं इधर रोज आता हूँ। करीब एक महीने से मैं एक 'एक्सपेरिमेण्ट' में लगा हूँ।"

"कैसा एक्सपेरिमेण्ट ?"

प्रभात ने हँसकर कहा—"आजकल मैं मछली पकड़ने का प्रयोग कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि बिना पानी में घुसे हुए मछलियों को पकड़ने में सफलता प्राप्त करूँ।"

समीर ने पूछा—"इसके लिए तुम कौनसा प्रयोग करते हो ?"

प्रभात ने कहा—"मैं समुद्र के पानी में तम्बाकू डालता हूँ। मेरा खयाल है कि जब मछलियाँ तम्बाकू खा लेंगी तो उसे थूकने के लिए जरूर ही पानी से बाहर निकला करेंगी। फिर जब वे बाहर निकल आएँगी तो उन्हें पकड़ना आसान हो जायगा।"

समीर ने आश्चर्य से पूछा—"तो क्या मछलियाँ थूकने के लिए बाहर भी निकलती हैं ?"

प्रभात ने कहा—"अभी उन्हें तम्बाकू खाने की आदत लगी नहीं है। एक महीने से इसी प्रयोग में लगा हूँ। जब उन्हें तम्बाकू का चस्का लग जायगा तब वे थूकने के खयाल से जरूर बाहर निकलेंगी।"

समीर ने चिढ़कर कहा—"तुम मूर्ख हो !"

इसके जवाब में प्रभात बुद्धिमान की तरह हँस दिया और कहा—"एक दिन लोग एडीसन और आइन्स्टाइन को भी मूर्ख ही कहा करते थे।"

# दो

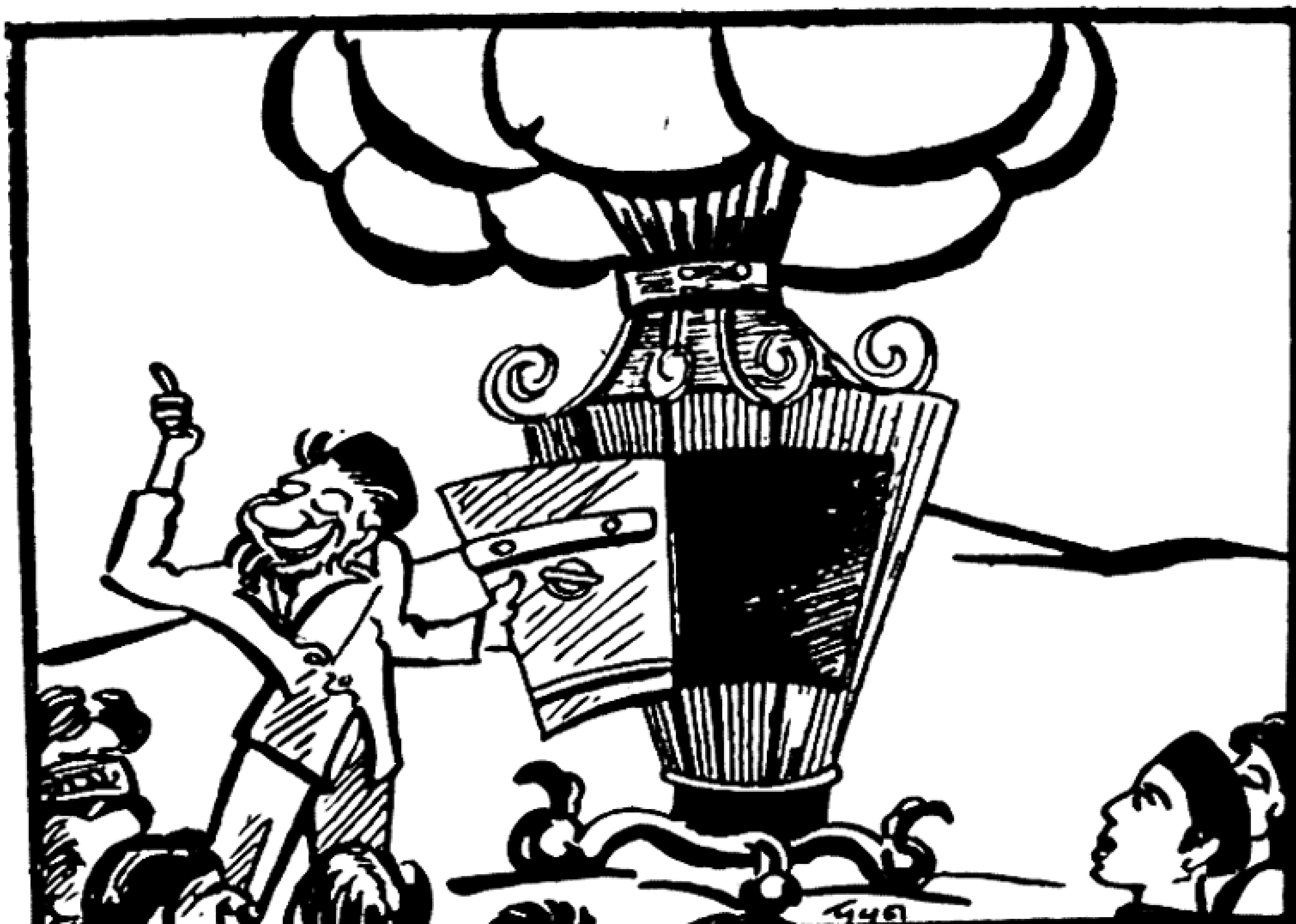
: १ :

समुद्र के किनारे घूमते हुए उन लोगों ने देखा कि एक जगह बालू पर भीड़ लगी हुई है और उस भीड़ के बीचोंबीच एक आदमी खड़ा होकर लेक्चर दे रहा है। उसकी चुग्गी दाढ़ी थी और वह बेडौल बदशक्ल आदमी था। जैसा वह बदशक्ल था वैसी ही बदशक्ल एक मशीन उसके पास रखी हुई थी। वह मशीन बहुत ही बड़ी थी और किसी भयानक जीव के अण्डे के समान मालूम होती थी। ये दोनों मित्र भी उसी भीड़ में पैवस्त हो गए और उस आदमी का लेक्चर सुनने लगे। वह चुग्गी दाढ़ी वाला आदमी चिल्लाता हुआ भाषण दे रहा था—"दोस्तो, जमाने की पुकार है कि ऊपर उठो। उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम, अग्निकोण, ईशानकोण, हर तरफ से यही आवाज आ रही है कि ऊपर उठो। जमीन कहती है कि ऊपर उठो और आसमान पुकारता है कि ऊपर उठो। हिमालय से लेकर अटक तक और अटक से लेकर कटक तक चारों ओर यही ऊपर उठने की ध्वनि गूँज रही है। भाइयो, इसीलिए हमने यह नई मशीन बनाई है जो आदमी को ऊपर उठाती है। यह आपको जमीन से ऊपर उठाएगी, हिमालय पर्वत की गौरीशंकर चोटी से ऊपर उठाएगी और पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से भी ऊपर ले जाकर आपको उन नक्षत्रों में पहुँचाएगी जहाँ आज तक कोई भी मनुष्य

नहीं जा सका है। क्या आप उन ग्रह और नक्षत्रों पर नहीं जाना चाहते जहाँ आज तक कोई भी मनुष्य नहीं पहुँच सका है ?"

चुग्गी दाढ़ी वाले ने अपने भाषण में बहुत ही बड़ा प्रश्नविराम लगाया और इधर-उधर देखने लगा कि उसकी इस बात पर लोग क्या कहते हैं ? परन्तु चारों ओर सन्नाटा था। सभी लोग इस बात के लिए उत्सुक थे कि यह भाषण देने वाला आगे क्या कहना चाहता है।

समीर ने अपने बगल वाले आदमी को धक्का देकर पूछा—"भई, यह आदमी कौन है ?"



उसने जिस आदमी को धक्का देकर पूछा था वह आदमी और कोई भी नहीं, उसका मित्र प्रभात था। प्रभात ने उसका प्रश्न सुनकर अपने बगल वाले आदमी को धक्का दिया और पूछा—"भई, यह कौन आदमी है ?"

उसने कहा—"जानते नहीं ? यह प्रोफेसर किर्लोस्कर है। पहले साइन्स कालेज में प्रोफेसर था। पीछे वहाँ से निकाल दिया गया।"

"क्यों, निकाल क्यों दिया गया ?" प्रभात ने पूछा।

"अजी, यह आदमी पागल था। उसी पागलपन के कारण लोगों ने इसे कॉलेज से निकाल दिया था।"

समीर ने पूछा—"यह भाषण क्या दे रहा है ?"

उस आदमी ने चुग्गी दाढ़ी वाले के पास की मशीन की ओर इशारा करके कहा—"उस मशीन को देखते हो न ? वह कह रहा है कि यह मशीन उड़कर पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से भी ऊपर चली जायगी और चन्द्रमा आदि उपग्रहों और ग्रहों से होते हुए दूर-दूर के ताराओं तक पहुँच जायगी।"

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने फिर अपना भाषण आरम्भ किया। कहने लगे—"अरे मेरे प्यारे भाइयो, और अगर कोई मौजूद हो, तो बहनो, 'मेरे कहने का अभिप्राय, मन्तव्य और मक़सद यह है कि यह मशीन आपको बहुत ऊँचे पर ले जायगी और आपको वहाँ पहुँचा देगी जहाँ से आपकी यह पृथ्वी एक छोटे-से तारे के समान दिखलाई देती है। क्या आप उन ग्रहों और नक्षत्रों पर नहीं जाना चाहेंगे ? जब आप वहाँ से लौटेंगे तब आपके पास अतुलित ज्ञान भरा होगा और आपका स्वागत तेनसिंह से भी अधिक किया जायगा। बतलाइए, आप लोगों में से कौन-कौनसे दो आदमी इस मशीन के द्वारा ऊपर जाने के लिए तैयार हैं ?"

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने फिर अपने भाषण में एक बहुत बड़ा प्रश्न-विराम लगाया और चुप हो गए। मगर किसी ने उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। सभी चुप्पी साधकर खड़े थे। वहाँ इस प्रकार की चुप्पी थी कि मानो कोई तमाशा देख रहे हों।

जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो प्रोफेसर किर्लोस्कर ने कहना शुरू किया—"अरे मेरे प्यारे भाइयो, आप लोगों में से बहुत से आदमी बेकार होंगे। बेकारी के कारण उनको जिन्दगी भार मालूम होती होगी। मगर यदि वे चाहें, तो इस मशीन से ऊपर जाकर कुछ अनुभव प्राप्त

कर सकते हैं। आपमें बहुत से ऐसे क्लर्क भी होंगे, जिनका काम करते-करते कचूमर निकल गया होगा, फिर भी जिन्दगी भार रहती होगी। आप में बहुत से ऐसे भी होंगे जो रोज आत्म-हत्या करने की बात सोचा करते होंगे। मगर फिर भी आप लोगों में कोई आगे नहीं आता। कोई भी आकर यह नहीं कहता कि प्रोफेसर साहब, आप हमें ऊपर भेज दें। मैं अपने कुल का नाम उज्ज्वल करूँगा और अपने देश का नाम सार्थक करूँगा।"

इतना कहकर प्रोफेसर किर्लोस्कर चुप हो गए। उन्होंने भीड़ की ओर देखना शुरू किया कि उनकी बात का असर क्या होता है? मगर लोग प्रोफेसर के इस व्यंग को भी पी गए और टुकुर-टुकुर इस तरह देखते रहे मानो उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं।

मगर प्रभात का हृदय द्रवित हो उठा। उसने कहा—"इस बेचारे प्रोफेसर की सहायता करनी चाहिए।"

समीर ने कहा—"हम दोनों मिलकर इस बेचारे की मदद करें।"

प्रभात ने आश्वासन के भाव से कहा—"क्यों नहीं, क्यों नहीं।" इसके बाद दोनों चुप हो गए।

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने एक बार निराशा से चारों ओर देखा और तेज आवाज में पूछा—"क्या इस भीड़ में कोई भी ऐसा माई का लाल नहीं जो आकर कहे कि मैं इस मशीन से ऊपर जाना चाहता हूँ?"

तमाम सन्नाटा हो गया। किसी ने भी इस पुकार का उत्तर नहीं दिया। तब समीर आगे बढ़ आया और बोला—"आप इस मशीन के द्वारा ऊपर जाने का भाड़ा क्या लेते हैं?"

किर्लोस्कर स्टूल के ऊपर खड़ा होकर भाषण दे रहा था। समीर की बात सुनते ही स्टूल से कूदकर नीचे आ गया। उसने समीर को पकड़-कर उसे गले से लगा लिया और उसकी पीठ को थपथपाता हुआ कहने लगा—"तुम्हें कुछ भी भाड़ा नहीं देना पड़ेगा। बच्चे, यह एकदम मुफ्त है। बिना एक पैसा खर्च किये ही तुम ग्रह और नक्षत्रों के ऊपर

जा सकते हो।"

प्रोफेसर किर्लोस्कर गद्गद हो उठा था और उसके मुँह से निकली हुई बोली भी लड़खड़ा रही थी। वह मुग्ध था और समीर की पीठ थपथपाता ही जा रहा था। समीर के इस तरह बीच में आ जाने से तमाम भीड़ में खुशियाली छा गई। लोग तालियाँ पीटने लगे, सीटी बजाने लगे और टोपियों को हवा में उछालने लगे। प्रभात की बगल में जो आदमी था उसने आश्चर्य के साथ प्रभात से कहा—"तुम्हारा मित्र तो उस पागल के फेर में पड़ गया। तुम उसे बचाते क्यों नहीं ?"

प्रभात ने कहा—"अगर यह पागल होगा तो इसकी मशीन हवा में उड़ेगी ही नहीं। फिक्र की बात क्या है ?"

उस आदमी ने कहा—"मगर परीक्षा तो ले-लेनी चाहिए। कौन जाने वह पागल ही हो !"

अब प्रभात भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा और प्रोफेसर किर्लोस्कर से कहा—"मैं आपसे एक हिसाब पूछना चाहता हूँ।"

किर्लोस्कर ने कहा—"पूछो !"

प्रभात ने पूछा—"आठ को आठ से गुणा करने पर क्या उत्तर आता है ?"

किर्लोस्कर ने उत्तर दिया—"६३·६६ !"

किर्लोस्कर के इस उत्तर से प्रभात को पूरी तसल्ली हो गई। कम-से-कम इतना इतमीनान हो गया कि यह आदमी जब इतना ठीक उत्तर देता है तो पागल कदापि नहीं है। वह प्रसन्नता से भर उठा और जैसी उसकी आदत थी, उसने कहा—"हल्लो मिस्टर किर्लोस्कर.......... चिर्रो !" और उसने अपना दाहिना हाथ मिलाने के लिए उसकी ओर बढ़ा दिया।

किर्लोस्कर ने उससे हाथ मिलाया और हाथ मिलाने के बाद वह आत्मतुष्ट के समान व्यर्थ ही हँसने लगा; फिर सहसा उसे कुछ याद आया और उसकी हँसी बन्द हो गई। उसने इन दोनों मित्रों को अपने

दोनों हाथों से थपथपाना शुरू कर दिया। फिर उसने कहा—"आओ, मैं तुम्हें यह मशीन दिखलाऊँ। इसे चलाना बिलकुल आसान है।"

उसने उस मशीन का दरवाजा खोला और तीनों आदमी अन्दर चले गए। अन्दर दो आदमियों के लायक जगह थी और पास में कई बटन लगे हुए थे। प्रोफेसर किर्लोस्कर ने कहा—"इस मशीन को चलाना बहुत ही आसान है। एक नम्बर के बटन को दबाने से यह मशीन ऊपर जाती है। दो नम्बर की घुण्डी को जिस ओर घुमाओ, यह मशीन उसी ओर जाने लगेगी। तीसरे बटन को दबाने से यह नीचे की ओर जाती है।"

प्रभात ने पूछा—"और अगर भूख लगे तब किस घुण्डी को दबाना पड़ेगा?"

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने कहा—"भूख लगने पर चार नम्बर की घुण्डी को दबाना पड़ता है।"

समीर ने आश्चर्य से पूछा—"फिर चार नम्बर की घुण्डी को दबाते ही भूख मिट जाती है?"

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने कहा—"उसके दबाते ही विटामिन की गोलियाँ निकल आती हैं। एक गोली एक हफ्ते के लिए काफी है। इस विटामिन की गोली को मैंने होमियोपैथी की थ्योरी से बनाया है।"

समीर ने पूछा—"इसके बाद और क्या सीखना है?"

किर्लोस्कर ने उसकी पीठ ठोककर कहा—"बस, अब तुम सीख चुके।"

## : २ :

जब वे तीनों आदमी मशीन के भीतर से बाहर निकले, तो चारों ओर से पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया, दनादन फोटो लिये जाने लगे और जनता इस तरह चिल्लाने लगी मानो उसने कोई अजीब चीज देखी हो।

लोग उसी तरह शोर मचा रहे थे जिस प्रकार सरकस में बन्दर और भालू को देखकर चिल्लाया करते हैं। समीर और प्रभात का कभी इतना सम्मान नहीं हुआ था। वे लोग खुशी से हँस रहे थे और सिर झुका-झुकाकर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित कर रहे थे। समीर पहले मुस्कराता तब अपना सिर झुकाकर आभार प्रदर्शित करता। प्रभात पहले आभार प्रदर्शन करके सिर झुका लेता, तब मुस्कराना शुरू करता। दोनों मित्रों के सिर विचित्र भंगी से हिल रहे थे।



पत्रकारों के बीच से एक आदमी आगे बढ़कर उन लोगों के पास पहुँचा और बड़े विनीत भाव से बोला—"मैं प्रेस-भ्रस्ट आफ इण्डिया का प्रतिनिधि हूँ। कृपापूर्वक आप मुझे कोई सन्देश दें।"

"सन्देश? क्या सन्देश दूँ?" समीर एक क्षण के लिए चक्कर में पड़ गया। वह सोच ही नहीं सका कि सन्देश दूँ तो क्या दूँ? अगर कुछ न कहूँ, तो यह प्रेस भ्रस्ट वाला क्या कहेगा? तब समीर ने ज़रा अकड़कर

सिर हिलाया, फिर समझदारी के साथ बोला—"सन्देश ? अच्छी बात है !" समीर ने बड़े आदमी की तरह कहना शुरू किया—"आप लिखिए कि आदमी को हमेशा ऊपर उठने का विचार करना चाहिए। नीचे गड़बड़ है, ऊपर शान्ति है। शान्ति के ऊपर जरा भी गड़बड़ नहीं है।"

प्रेस भ्रस्ट समाचार-एजेन्सी वाले ने प्रसन्नतापूर्वक इस बात को नोट किया। उसके बाद सिर उठाकर बोला—"फिर ?"

समीर ने आश्चर्य से कहा—"फिर ? तो क्या आप और भी लिखेंगे ? अच्छी बात है। अब आप लिखिए कि भारतवर्ष को साफ कर देने के लिए सफाई का आन्दोलन जोरों से होना चाहिए।"

इतना नोट कर लेने के बाद प्रेस-प्रतिनिधि ने पूछा—"और भी कुछ ?"

"और कुछ ?" समीर ने सोचते हुए कहा—"और कुछ में लिखिए कि आदमी को अपना पैकिंग और लेबल ठीक रखना चाहिए—भीतर का माल चाहे जैसा भी हो।"

प्रेस-प्रतिनिधि ने इस बात को नोट कर लिया। इसके बाद बड़े विनीत भाव से बोला—"अब आप अपनी अन्तिम बात कह जाइए। मतलब, कि अन्तिम सन्देश।"

"अन्तिम सन्देश ?" समीर को सोचने पर भी कुछ सूझ नहीं रहा था। बड़बड़ाता हुआ-सा बोला—"मेरी अन्तिम बात यही है कि....."

इतने में पीछे से किसी ने कहा—"रग्गड़दास का दन्तमञ्जन ठीक है !"

और समीर के मुँह से भी वही बात निकल गई—"रग्गड़दास का दन्तमञ्जन ठीक है !"

उसके बाद समीर ने अचम्भे से अपना सिर घुमाकर देखा तो एक आदमी रंगीन कोट पहने हुए मुस्करा रहा था। उसने बड़े विनीत भाव से सिर झुकाकर कहा—"महोदय, मैं रग्गड़दास के दन्तमञ्जन का प्रतिनिधि हूँ। आपने जो सन्देश दिया वह बहुत ठीक है। इसके लिए मैं

कृतज्ञ हूँ और आपको एक शीशी दन्तमञ्जन उपहार देता हूँ। आप इस शीशी को भी यात्रा में लेते जायँ।"

समीर ने झल्लाकर कहा—"नहीं-नहीं, मैं आपके दन्तमञ्जन को कुछ भी सन्देश नहीं देता।"

"ठीक है," इतने में पीछे से एक आदमी चिल्ला उठा—"बैंड-वेदर टायर अच्छा होता है। इस टायर के दाँत मजबूत होते हैं।"

तब तक दन्तमञ्जन वाला चिल्लाया—"उसके दाँत इसीलिए मजबूत होते हैं, क्योंकि वह रग्गड़दास का दन्तमञ्जन लगाता है।"

इस गड़बड़ी से समीर विरक्त हो उठा। उसने क्रोध से झल्लाते हुए प्रेस-प्रतिनिधि से कहा—"महोदय, अब मेरा अन्तिम सन्देश आप लिख लें। मैं दावे के साथ यह घोषित करता हूँ कि बैंड-वेदर टायर अपने दाँतों के लिए कदापि रग्गड़दास का दन्तमञ्जन व्यवहार नहीं किया करता।"

मगर उस प्रेस-प्रतिनिधि ने समीर के इस अन्तिम सन्देश को नोट किया ही नहीं। उसने समीर के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"महाशय, हम लोग बिना पैसों के किसी का मुफ्त विज्ञापन नहीं करते। इसके अलावा किसी की बेकार निन्दा भी नहीं किया करते।"

समीर ने पूछा—"तो आप क्या चाहते हैं?"

प्रेस-प्रतिनिधि ने कहा—"महाशय, साफ बात यही है कि हमारा प्रेस न साहित्य और कला के समाचारों से दिलचस्पी लेता है और न संगीत आदि के समाचारों से। हम लोग केवल राजनीतिक व्यक्तियों के समाचारों को इधर से उधर पहुँचाया करते हैं।"

समीर ने पूछा—"ऐसा आप लोग क्यों करते हैं?"

प्रेस-प्रतिनिधि ने कहा—"इसका कारण यह है कि भारत सरकार से लेकर प्रान्तीय सरकारों तक के बजट में हमारे प्रेस ट्रस्ट के लिए रुपया रखा जाता है। इसीलिए हम लोग राजनीतिक समाचारों के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं।"

समीर ने कहा—"तब फिर मैं क्या सन्देश दूँ ? मैं तो लेशमात्र भी राजनीतिक आदमी नहीं हूँ।"

प्रेस-प्रतिनिधि ने समझाया—"मगर आप किसी राजनीतिक महापुरुष के बारे में सन्देश दे सकते हैं। इस तरह आपका वह सन्देश राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जायगा।"

तब समीर सोचने लगा—"किस आदमी के बारे में सन्देश दूँ ?" अपनी इस बात को समीर ने केवल सोचा ही नहीं, बोल भी गया।

प्रेस-प्रतिनिधि ने कहा—"जैसे खाद्य-मन्त्री पंजाबराव देशमुख। या और भी बहुत से लोग हैं। या नहीं तो सैनिकों के सेनापति के बारे में भी कह सकते हैं।"

समीर ने प्रसन्न होकर कहा—"सैनिकों के सेनापति जो परेड करते हैं उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। इसके अलावा श्री पंजावराव देशमुख ने जो देशव्यापी बबूल लगाने की योजना बनाई है उसे भी मैं बहुत पसन्द करता हूँ। बबूल के काँटों से देश का बहुत उपकार होगा। यही मेरा अन्तिम सन्देश है। मैं चाहे जिस ग्रह या नक्षत्र में जाऊँगा सभी जगह बबूल के काँटों का प्रचार करूँगा।"

प्रेस-प्रतिनिधि ने उछलकर कहा—"वाहवा! बहुत खूब!"

उसकी प्रसन्नता को देखकर समीर को कुछ आशा हुई। उसने कहा—"महोदय, मैं अपनी कविताओं के बारे में भी कुछ कहना चाहता हूँ।"

प्रेस-प्रतिनिधि ने मुँह बनाकर कहा—"अफसोस! मैंने आपसे पहले ही निवेदन किया है कि हम लोगों का प्रेस साहित्य, कला आदि से कुछ भी दिलचस्पी नहीं लिया करता।"

इतना कहकर वह प्रेस-प्रतिनिधि चट प्रभात की ओर मुड़ गया। सिर झुकाकर उसका अभिवादन किया और बोला—"आप मुझे क्या सन्देश देते हैं?"

प्रभात ने गर्व के साथ कहा—"जब हमारे दल के नेता ने आपको

सन्देश दे ही दिया, तो फिर मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता कि मैं भी आपको कुछ सन्देश दूँ।"

: ३ :

प्रोफेसर किर्लोस्कर इन दोनों मित्रों को चाय पिलाने के लिए पास के काफे में ले गया था। वहाँ से लौटते समय किर्लोस्कर तनिक आगे बढ़ गया तो प्रभात ने समीर से कहा—"तो तुम अनन्त की यात्रा में जा रहे हो? मेरी शुभ कामनाएँ भी स्वीकार करो।"

समीर ने चौंककर कहा—"क्यों, क्या तुम नहीं जा रहे हो?"

प्रभात ने करुण भाव से कहा—"भाई साहब, मुझे छोड़ दीजिए। मैं नहीं जाना चाहता।"

समीर ने बिगड़कर पूछा—"तुम जाना क्यों नहीं चाहते?"

"एक बात है, भाईसाहब!"

"क्या बात? कौनसी बात? कैसी बात?"

प्रभात ने सँभलकर कहा—"भाईसाहब, बात यह है कि मैं एक लड़की से प्रेम करता हूँ।"

समीर ने उत्सुक होकर पूछा—"तुम किस लड़की से प्रेम करते हो?"

प्रभात का मुँह सूख गया। उसने सिर झुकाकर कहा—"जाने दो, मैं तुमसे उसके बारे में नहीं बतलाऊँगा।"

"क्यों?"

प्रभात ने मुँह बनाकर कहा—"तुम उसके बारे में सुनोगे तो मुझे मारना शुरू करोगे।"

"नहीं मारूँगा, कहो।"

प्रभात ने सिर हिलाया—"नहीं-नहीं, तुम मुझे मारोगे, ज़रूर मारोगे। मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहूँगा।"

समीर ने कहा—"अच्छी बात है, न सही। मत बतलाओ। वह

लड़की देखने में कैसी है ?"

मुग्ध भाव से प्रभात ने कहा—"जैसे सन्ध्या के आसमान में एक तारा !"

समीर ने पूछा—"और उसकी आँखें ?"

प्रभात ने उसी भाँति भाव-विभोर के समान कहा—"जैसे सन्ध्या के आसमान में दो तारे !"

"और उसके दाँत ?"

"दाँत ? ओह !" प्रभात ने कहा, "जैसे सन्ध्या के आसमान में अनेकानेक तारे !"

"तब वह ज़रूर ही रगगड़दास का दन्तमञ्जन लगाती होगी," समीर ने कहा, "लेकिन मैं तुम्हें केवल प्रेम करने के लिए नहीं छोड़ूँगा। प्रेम कोई ज़रूरी चीज़ नहीं। कोई ज़रूरी काम होता तो कहा जाता।"

प्रभात ने उत्साहित होकर कहा—"हाँ-हाँ, मेरा अभी बहुत सा काम बाकी बचा हुआ है।"

"कौनसा काम ?" समीर ने पूछा।

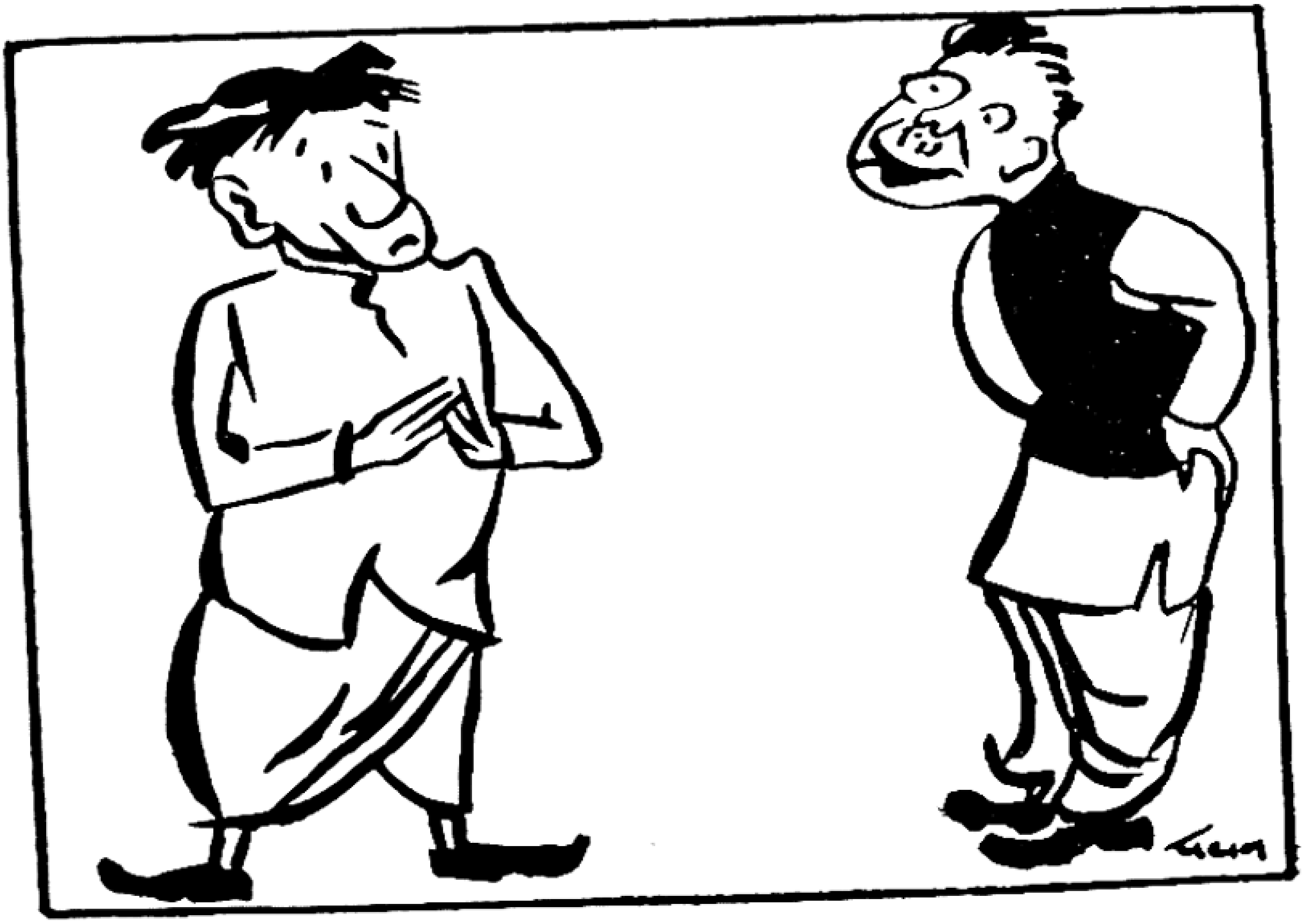
प्रभात ने कहा— 'कल मैंने एक डिबिया सिगरेट उधार खरीदी थी, उसका दाम देना है या नहीं ?"

समीर ने कहा—"यह ज़रूरी नहीं। दाम न देने से भी दूकानदार का काम चल सकता है।"

"मगर मुझे कल एक सिनेमा देखने का भी विचार है," प्रभात ने कहा।

समीर घुड़ककर बोला—"सिनेमा देखना प्रेम करने से भी बुरी चीज़ है। इसके लिए मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। अब तो तुम्हें मेरे साथ चलना ही पड़ेगा।"

प्रभात ने लाचार होकर कहा—"तुम बात समझते नहीं तो मैं क्या करूँ ? मैं चाहता हूँ कि मैं जो मछली पकड़ने का प्रयोग कर रहा



हूँ उसे बन्द कर दूँ। अगर तुम्हारे साथ चला गया तो फिर वह प्रयोग बन्द नहीं हो सकता।"

समीर ने झल्लाकर कहा—"तुम मूर्ख हो। मेरे साथ चलने पर तुम्हारा वह प्रयोग आप-से-आप बन्द हो जायगा।"

प्रभात ने लाचारी दिखलाते हुए कहा—"अब बात तो तुम समझते नहीं। जब तक मैं उस प्रयोग को बन्द नहीं करूँगा तब तक वह प्रयोग बन्द किस तरह हो सकता है ?"

"वह आप-से-आप बन्द हो जायगा," समीर ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"तुम्हें मेरे साथ चलना ही पड़ेगा।"

प्रभात की समझ में यह आता ही नहीं था कि जब तक मैं उस प्रयोग को बन्द नहीं करूँगा तब तक वह बन्द कैसे होगा ? इसके अलावा मेरे लिए ग्रह और नक्षत्रों में जाना ही क्यों ज़रूरी है ? उसने हाथ जोड़कर कहा—"भाईसाहब, मैं नहीं जाना चाहता। मुझे माफ

कर दीजिए। देखिए, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ।"

समीर ने डपटकर उसे अपनी ओर खींचा—"मूर्ख कहीं के ! तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा।"

प्रभात एकदम रुआँसा हो गया। वह उसी तरह समीर के साथ जा रहा था जिस प्रकार आदमी स्वयं अपनी कब्र में दफन होने के लिए जा रहा हो।

शाम हो चुकी थी। झुटपुटे में बिजली का प्रकाश चमकने लगा था। चौपाटी के किनारे-किनारे गैस की रोशनी थी। वह विशालकाय मशीन खड़ी थी। उसे घेरकर लोग हल्ला मचा रहे थे। प्रोफेसर किर्लोस्कर सिर हिला-हिलाकर कुछ कह रहा था। प्रभात की आँखों से आँसू टपकने लगे। हे भगवन्, अब कहाँ चला जाना पड़ेगा ? अब समुद्र के किनारे मछली पकड़ने का प्रयोग कौन करेगा ?

प्रभात ने रूमाल से अपनी आँखें पोंछीं।

## : ४ :

जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। आसपास की भीड़ छँट गई थी। केवल दूर-दूर के लोग संवाद सुनकर मोटर पर आते थे और उस स्थान पर गाड़ी को धीमी करके फिर फुर्र चले जाते थे। चाँदनी रात में समुद्र में उठने वाली हिलोर चाँदी के समान मालूम होती थी। सब-कुछ देख-भालकर समीर ने प्रोफेसर किर्लोस्कर से कहा—"कहाँ ? इस मशीन में ऑक्सीजन का तो कोई प्रबन्ध ही नहीं।"

किर्लोस्कर ने उछलकर कहा—"बस-बस दोस्त, वही प्रबन्ध तो हमारा सबसे बढ़िया है। ऑक्सीजन कहाँ बनता है ?"

समीर ने कहा—"मुझे क्या मालूम कि आक्सीजन कहाँ बनता है। शायद दिल्ली में बनता होगा।"

किर्लोस्कर ने हँसते हुए कहा—"नहीं दोस्त, ऑक्सीजन उन्हीं चीजों से बनता है जिनमें ऑक्सीजन नहीं है। इसलिए मैंने ऐसा

इन्तजाम किया है कि जहाँ ऑक्सीजन नहीं हो वहाँ के वातावरण से रगड़ खाकर इस मशीन के भीतर आप-से-आप ऑक्सीजन पैदा हो जाता है।"

प्रभात एक हाथ में दूरबीन लेकर खड़ा था। उसने कहा—"इस मशीन के अन्दर नींद तो आ सकती है?"

किर्लोस्कर ने कहा—"नींद ही क्यों, सपने भी आ सकते हैं।"

प्रभात को आश्चर्य हो रहा था कि इस मजबूत मशीन के भीतर, बन्द दरवाजे से सपना किस तरह और कैसे घुस सकता है? मगर वह चुप रह गया, इस विषय में कुछ कहा नहीं। जैसा कि समीर उसे समझा करता था, शायद इस प्रश्न से उसे फिर मूर्ख समझ लेता। वह हाथ में दूरबीन लिये हुए खड़ा रहा और चुपचाप इस बात पर आश्चर्य करता रहा।

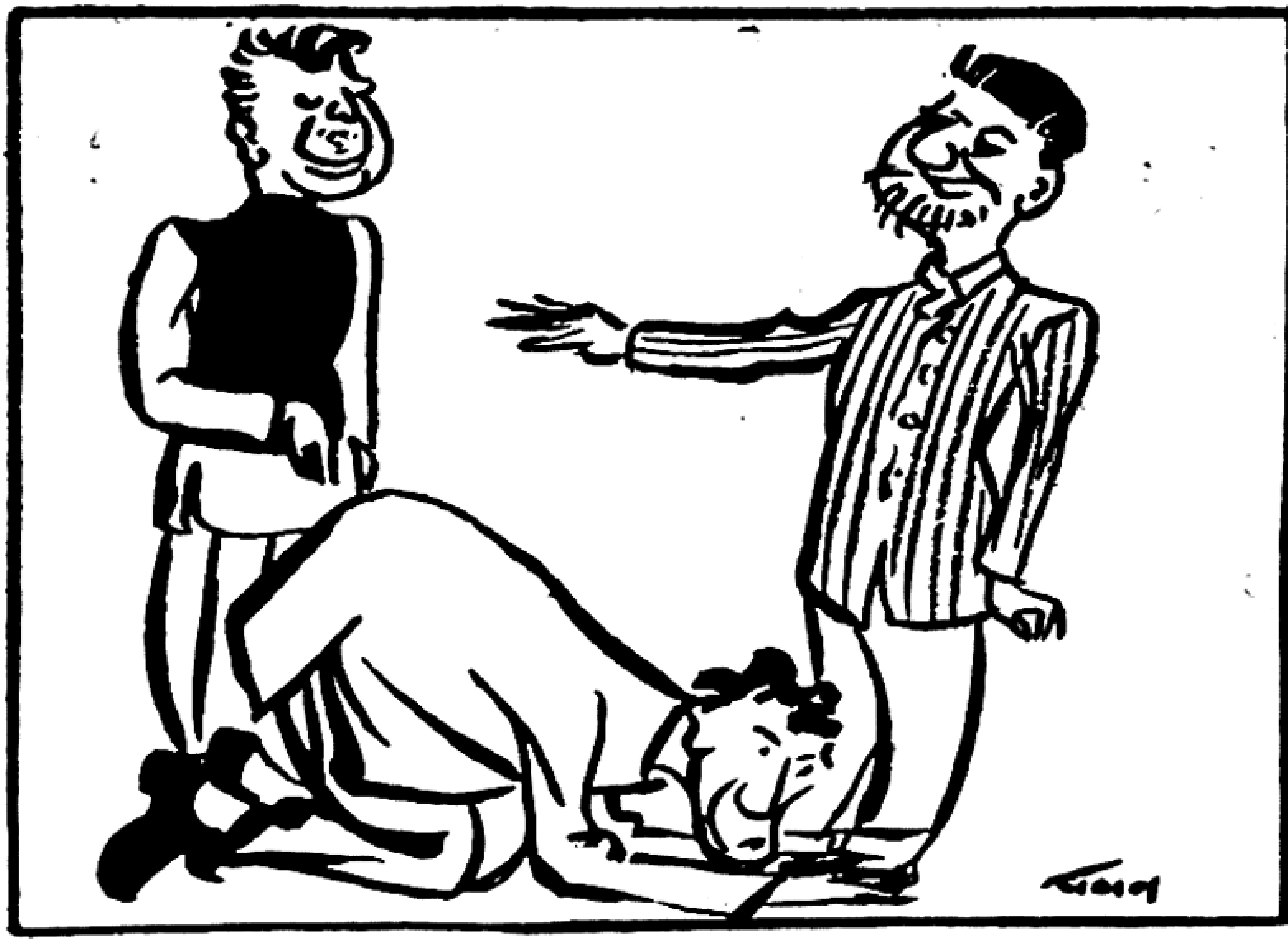
रात के करीब साढ़े आठ बज चुके थे। समीर एकदम जाने को प्रस्तुत था। किर्लोस्कर ने उसे गले से लगाया और कहा—"रेडियो से समाचार भेजते रहना। मीटर मैंने बतला दिया है।"

"जरूर-जरूर!" समीर ने कहा—"अगर मीटर मैं भूल भी गया तब भी समाचार देता रहूँगा। इसके लिए आप इतमीनान रखें। अच्छा, नमस्ते।"

किर्लोस्कर ने प्रभात के कन्धे को थपथपाया। उसका हृदय उमड़ रहा था। उसने रुँधे हुए गले से कहा—"इस बुड्ढे को याद रखना, दोस्त!"

प्रभात ने एकदम झुककर किर्लोस्कर के चरणों में सिर रख दिया। उनके जूते के ऊपर जो धूलि थी उसे उठाकर अपने सिर पर लगाता हुआ बोला—"गुरुदेव, मैं बराबर आपको याद रखूँगा, बराबर आपको याद रखूँगा।"

यह कहकर वह फफकता हुआ बच्चों की तरह रोने लगा। रोता हुआ बोला—"गुरुदेव, आप मुझे अपनी कोई निशानी दे दें। उसी



निशानी को जब मैं देखूँगा तब आपको याद कर लिया करूँगा।"

प्रभात की बात सुनकर किर्लोस्कर करुण हो आए। उन्होंने रुँधे हुए गले से कहा—"मेरे पास जो कुछ भी था सब कुछ मैंने इसी मशीन में लगा दिया है। अब मेरे पास कुछ भी नहीं जो अपनी निशानी के लिए दूँ।"

प्रभात ने कुछ सोचकर कहा—"गुरुदेव, यदि आपके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है, तो अपनी दाढ़ी में से दो बाल ही उखाड़कर दे दीजिए। मैं आपकी उसी निशानी को जतन से रखूँगा।"

प्रोफेसर किर्लोस्कर ने अपनी दाढ़ी नोची और जो भी बाल हाथ लगे उन्हें प्रभात के हवाले कर दिया। बोले—"बेटा, इस बुड्ढे को कभी मत भूलना।"

समीर ने भी चरण छूकर किर्लोस्कर को प्रणाम किया। बोला—"अब जाता हूँ, गुरुदेव!"

किर्लोस्कर ने आँसू बहाते हुए कहा—"जाओ बच्चो, भगवान्

तुम्हारा सहायक है।"

: ५ :

चाँदनी रात थी। बैलून उड़ चला था। नीचे बम्बई नगर के चमकते हुए बल्ब इस तरह दिखलाई दे रहे थे मानो अन्धकार के महासमुद्र में प्रकाश के बुद्बुद हों। परन्तु वह दृश्य शीघ्र ही विलुप्त हो गया। अब वे बादलों के बीच से जा रहे थे।

जब वे बादलों के ऊपर उठे तो चारों ओर केवल चाँदनी-ही-चाँदनी थी। उनका बैलून उड़ता हुआ अनन्त की ओर जा रहा था।

समीर उत्सुकतापूर्वक इन दृश्यों को देखता हुआ जब ऊब उठा, तो उसने सिर घुमाकर देखा कि प्रभात चुपचाप बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। सिर के केश अस्त-व्यस्त, आँखें झुकी हुई और चेहरा उदास।

समीर ने पूछा—"क्या सोच रहे हो, प्रभात ?"

प्रभात ने निराशा से सिर हिलाकर कहा—"न जाने हम लोग कहाँ जा रहे हैं !"

समीर ने कहा—"कहीं-न-कहीं हम लोग अवश्य ही पहुँचेंगे।"

प्रभात ने विचारपूर्ण मुद्रा में प्रश्न किया—"जहाँ हम लोग जायँगे वहाँ किराये का मकान तो मिल जायगा ?"

"क्यों ?"

प्रभात ने कहा—"देखते नहीं, आजकल किराये का मकान मिलने में कितनी दिक्कत होती है।"

समीर ने हँसते हुए कहा—"तुम मूर्ख हो !"

प्रभात ने तमतमाकर अपना सिर ऊपर उठाया। उसने बिगड़कर कहा—"देखो जी, जमीन पर तुम मुझे मूर्ख कहते थे तो सह लेता था, अब आसमान पर भी तुम मूर्ख कहोगे तो वह बरदाश्त नहीं हो सकता। समझे ?"

# तीन

: १ :

दिन-पर-दिन बीत रहे थे। विश्व-ब्रह्माण्ड के बीच वह बैलून किसी आवारे की तरह उड़ता चला जा रहा था। जैसी कि उन लोगों से आशा थी, वे लोग अभी तक रेडियो का मीटर भी भूल चुके थे और पृथ्वी से बिलकुल सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। जब उन लोगों का बैलून चन्द्रमा के पास पहुँचा था तब समीर ने विचार किया था कि चन्द्रमा पर कुछ दिन विश्राम करें। लेकिन प्रभात ने कहा कि चन्द्रमा पर हवा है ही नहीं, वहाँ जाना बेकार है। रात होते ही उल्का की झड़ी बँध जाती थी, बड़े वेग से तारे टूटते हुए दिखलाई देते थे। दिन में तारे टूटते थे; लेकिन वे दिखलाई नहीं देते थे। एक बार तो उनका बैलून एक उल्का से टकराते-टकराते किसी तरह बच गया। पीछे उन लोगों ने पाया कि उनके बैलून की बनावट ही ऐसी है जिसके कारण वह उल्का से टकराता नहीं। उल्का के झटके जब आते तब वह आप-से-आप अलग हो जाता और उल्का नीचे चला जाता। क्रमशः उन लोगों का बैलून सौरमण्डल से भी बाहर हो गया। अब केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था और उन लोगों का बैलून उड़ता चला जा रहा था। समीर व्यग्र था और शीघ्र ही कहीं पहुँच जाना चाहता था। उसने बैलून की गति तीव्र से भी तीव्रतर कर दी थी और इस आशा में था कि शीघ्र ही कहीं पहुँच जायँगे।

अब समीर जब दूरबीन से दूर-दूर देखता तो उसे भ्रम होने लगता। एक दिन उसने दूरबीन से देखते हुए कहा—"मैं देख रहा हूँ कि बादलों के नीचे एक पहाड़ है। उसके नीचे तलहटी है। एक झाड़ी के भीतर से भेड़ों का दल निकलता आ रहा है।........वह आम का पेड़ है। वहाँ छाया में एक गाय बैठी हुई पागुर कर रही है। उसका एक बछड़ा है जो उछलता हुआ इधर-से-उधर दौड़ जाता है। दौड़कर अपनी माँ के पास आता है और क्षण-भर के लिए रुक जाता है।........वह देखो, वह !.... एक आदमी आया है। उसके गले में कम्बल लपेटा हुआ है। हाथ में एक लाठी है। पैरों में चमरौंधा जूता और घुटने तक की धोती। वह उस गाय से बातें कर रहा है।..............."

"वह गाय से बातें कर रहा है ? किस भाषा में बातें कर रहा है ? लाओ तो, जरा मैं भी सुनूँ !" प्रभात ने झपटकर उसके हाथ से दूरबीन छीन ली और स्वयं देखने लगा। बोला—"गाय कहाँ ? वह तो सूअर है।....... उसकी आँखों पर चश्मा लगा हुआ है।........लो, देखो, वहाँ पेड़ चल रहे हैं। वे बैठकर परस्पर बातें करते हैं।.......... अररर, वह देखो। वहाँ कोई स्कूल है। पढ़ाई भी हो रही है। यह क्या ? लड़के पढ़ाते हैं और मास्टर पढ़ रहे हैं।...........वह उड़ने वाला हाथी देखो। उड़ा जा रहा है, उड़ा जा रहा है। एक कबूतर से उस हाथी की लड़ाई हो रही है। हाथी अपनी सूँड को पटक रहा है।............"

"कहाँ ?" समीर ने फिर उसके हाथ से दूरबीन ले ली और आप देखने लगा। बोला—"वैसा तो कुछ दिखलाई नहीं देता। मैं देख रहा हूँ कि पहाड़ से एक झरना गिर रहा है। नीचे गायों का एक झुण्ड है। कोई आदमी पहाड़ के ऊपर चढ़ता जा रहा है। पहाड़ की चोटी पर कोई स्त्री खड़ी है। ऊपर बड़े जोरों से हवा चल रही है और उस स्त्री का आँचल फहरा रहा है। वह हाथ हिला-हिलाकर किसी को पुकार रही है।...."

प्रभात चिल्ला उठा—"स्त्री ! एक स्त्री !....शायद वह मुझे पुकार रही हो। लाओ तो, देखूँ मैं भी।"

उसने झपाटे के साथ दूरबीन ले ली, समीर को हटाकर एक किनारे कर दिया और स्वयं दूरबीन से देखने लगा। बड़े गौर से देखने के बाद उसने कहा—"कहाँ ? वह तो स्त्री नहीं। वह एक बन्दर है जो शायद दूसरे किसी को पुकार रहा है। आँचल-वाँचल का पता नहीं, उस लंगूर की दुम लहरा रही है। कभी वह पेड़ के ऊपर उछलता है और कभी पेड़ ही उसके ऊपर उछल जाता है। दोनों खेल रहे हैं।"

समीर ने कहा—"लाओ तो, देखूँ जरा। हम लोगों में तो दो विद्वानों के समान मतभेद हो रहा है।"

और वह दूरबीन लेकर कोई दूसरा ही दृश्य देखने लगा।

सहसा प्रभात ने पूछा—"अभी क्या बजा है ?"

समीर ने अपनी घड़ी देखकर कहा—"सवा सात !"

प्रभात ने कहा—"यह इण्डियन टाइम है। यहाँ के टाइम के मुताबिक क्या वक्त हुआ है ?"

समीर ने उसकी बात का कोई जवाव नहीं दिया। वह दूरबीन से न जाने कैसा दृश्य देखने लगा था।

: २ :

एक दिन प्रभात जब सोकर उठा तो उसने समीर से कहा—"अब यार, ज़रा बाहर टहलने के लिए जा रहा हूँ। एक-डेढ़ घण्टे में वापस आऊँगा।"

वह उठकर खड़ा हो गया और बैलून का दरवाजा खोलने लगा।

समीर ने चिल्लाकर कहा—"यह क्या ? कहाँ चले हजरत ?"

प्रभात ने सहज भाव से कहा—"ज़रा टहलने जा रहा हूँ।"

समीर चिल्लाया—"तुम नहीं जा सकते।"

प्रभात ने इतमीनान के साथ कहा—"बस, यही पैंतालीस मिनट में वापस आ जाऊँगा।"

"तुम वापस नहीं आ सकते," समीर ने उसे रोकते हुए कहा—

"देखते नहीं, हम लोग बैलून पर जा रहे हैं ?"

प्रभात निराश भाव से बैठ गया और बड़बड़ाने लगा—"हम लोग बैलून पर जा रहे हैं। क्यों समीर, हम लोग कहाँ जा रहे हैं ?"

समीर ने चिढ़कर कहा—"हम लोग जहन्नुम में जा रहे हैं।"

प्रभात ने जैसे उत्फुल्ल होकर कहा—"वाहवाह, हम लोग जहन्नुम में जा रहे हैं। क्यों समीर, हम लोग जहन्नुम में कब पहुँचेंगे ?"

समीर ने उसकी ओर चिढ़कर देखा। वह मुस्करा रहा था और सिर हिला रहा था। सिर हिलाते हुए उसने कहना शुरू किया—

*"जाता हूँ मैं गगन में*
*मगन मन से*
*तारों के झुरमुट में लुकता-छिपता*
*दाढ़ी के दो बालों का सम्बल लेकर।*
*पता नहीं कहाँ से कहाँ पहुँच गया*
*रीते घट के समान विपुल ब्रह्माण्ड में।*
*अजी, रास्ता बताना ज़रा !"*

समीर ने घबराकर उसकी ओर देखा और पूछने लगा—"जब मैंने कविता छोड़ दी तो अब तुम कवि हो गए हो ?"

प्रभात ने बड़े अन्दाज़ के साथ मुस्कराकर कहा—"हाँ, मैं कवि हो गया हूँ।"

समीर ने चिढ़कर कहा—"कवि नहीं, तुम पागल हो गए हो।"

प्रभात ने उसी अन्दाज़ से मुस्कराते हुए कहा—"हाँ, मैं पागल हो गया हूँ। हम लोगों में जो पागल हो जाता है वही कविता बनाने लगता है।"

समीर को काटो तो खून नहीं। वह घबरा गया। उसकी समझ में आता ही नहीं था कि वह क्या करे।

इधर प्रभात सिर हिला रहा था और कह रहा था—"जब तुम सो जाओगे तब मैं इस दरवाजे को खोलकर चला जाऊँगा। बाहर विश्व-

ब्रह्माण्ड में तैरता रहूँगा। तुम्हारे लिए दरवाजा खुला छोड़ जाऊँगा। जब तुम्हारी मर्जी हो, चले आना। अगर मेरे साथ आ गए तो हम दोनों मित्र इस अन्तरिक्ष में तैरते रहेंगे, तैरते रहेंगे।"

समीर ने घबराकर कहा—"प्रभात, होश करो। भगवान् के लिए होश करो। मैं तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ। कुछ भी होश करो। तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता। तुम्हें किसी तरह भी पागल नहीं होना पड़ेगा। तुम होश में आ जाओ।........प्रभात, होश करो।"

प्रभात पालथी लगाकर बैठ गया और अपने को होश में लाने का यत्न करने लगा। फिर करुण स्वर में बोला—"देखो भाई समीर, होश तो मुझे होता ही नहीं।"

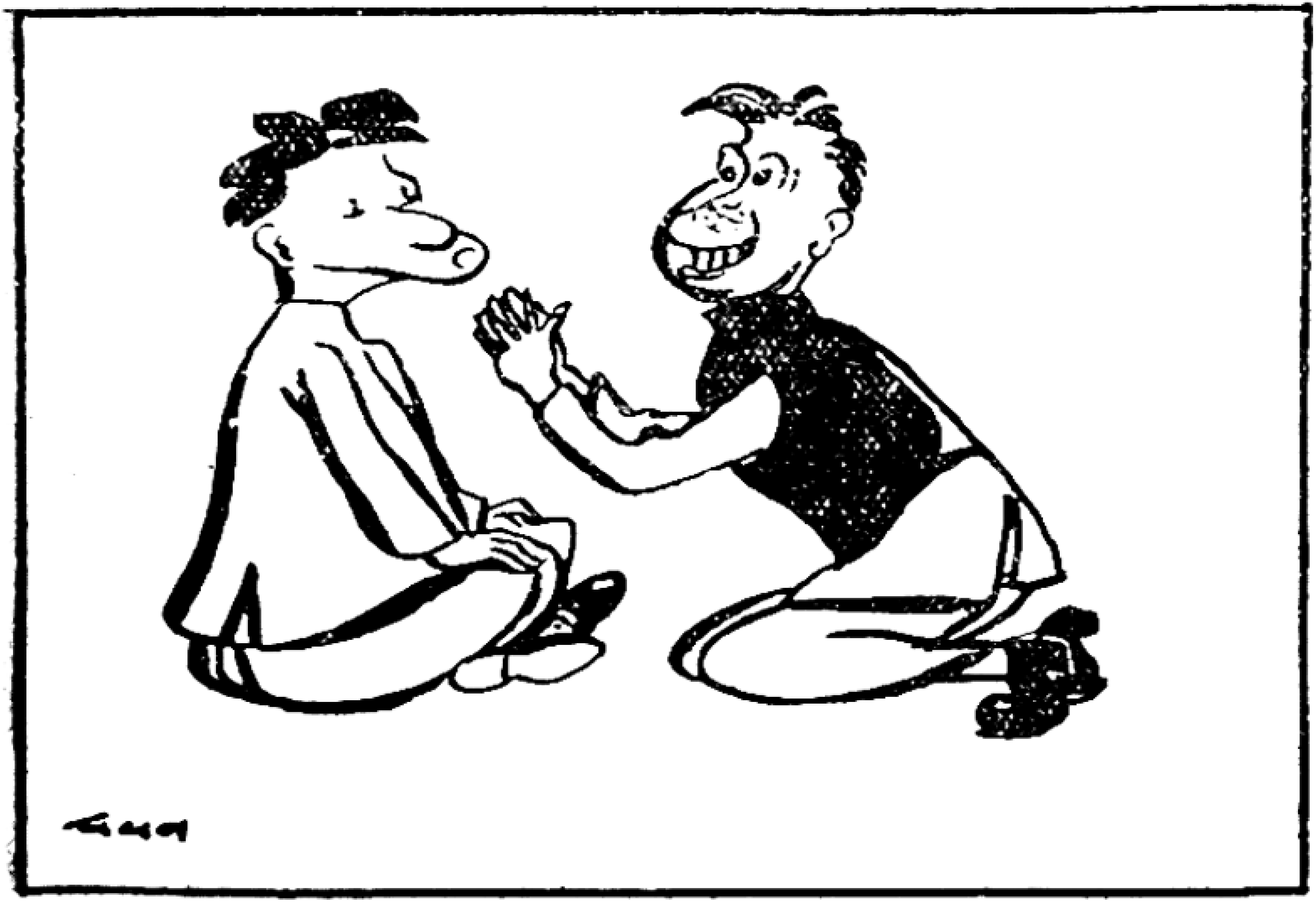
समीर की घबराहट का अन्त नहीं था। उसने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभात, भगवान् के लिए होश करो। अगर तुम होश नहीं करोगे तो तुम्हारे बिना मैं भी जिन्दा नहीं रहूँगा। किसी तरह भी तुम होश में आ जाओ।"

प्रभात ने कहा—"अच्छी बात है, मगर यह भी बतलाओ तो सही कि मैं किस तरह होश में आऊँ।"

समीर इस संकटपूर्ण स्थिति में उससे प्रार्थना करने लगा—"प्रभात, देखो, तुम उस घट-घटवासी ब्रह्म का ध्यान करो। उस पूर्ण-ब्रह्म का ध्यान करो जो पृथ्वी पर, आकाश में, अन्तरिक्ष में, सब जगह व्याप्त है। उसी भगवान् का तुम ध्यान करो, उसी से तुम्हें होश होगा।"

प्रभात उसकी बात सुनकर बड़े इतमीनान के साथ ब्रह्म का ध्यान करने के लिए बैठ गया। कुछ देर आँखें बन्द किये वह बैठा रहा, फिर बोला—"भाई, वह ब्रह्म तो मेरे ध्यान में आता ही नहीं। अब मैं क्या करूँ?"

समीर की अक्ल काम नहीं करती थी। वह बेतरह घबरा रहा था। उसने व्यग्र होकर कहा—"ब्रह्म ध्यान में नहीं आते तो शिवजी



का ध्यान करो।"

प्रभात ने उसकी बात मानकर शिवजी का ध्यान करना शुरू किया। उसके बाद निराशा से सिर हिलाते हुए कहा—"ब्रह्म ध्यान में नहीं, यह शिवजी भी मेरे ध्यान में नहीं आते।"

समीर ने जैसे छटपटाते हुए कहा—"तब कालीमाई,....अगर विन्ध्याचल की कालीमाई ध्यान में नहीं आएँ तो कलकत्ते की कालीमाई का ध्यान करो। अगर वह भी ध्यान में न आवें तो अपने बम्बई की मुम्बादेवी का ध्यान करो। शायद वह तुम्हें होश में ले आएँगी।"

प्रभात ने ध्यान लगाकर कहा—"वह भी ध्यान में नहीं आतीं। अब क्या करूँ? किस तरह होश में आऊँ?"

समीर ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"घबराओ नहीं। राष्ट्र-माता का ध्यान करो। देश के लीडरों का ध्यान करो। देश के नेताओं ने जब सारे भारतवर्ष का होश ठीक कर दिया है तब वे तुम्हारा होश भी जरूर ठीक करेंगे।"

मगर तनिक देर के बाद प्रभात ने कहा—"भाईसाहब, देश के नेतागण भी मेरे ध्यान में नहीं आते। अब मेरा होश किस तरह ठीक होगा ?"

समीर पसीने-पसीने हो रहा था। उसकी कोई युक्ति काम नहीं करती थी। अब प्रभात को किस तरह होश में लाऊँ ? कुछ सोचकर उसने कहा—"प्रभात भाई, एक बात मेरी समझ में आती है।"

"कहो।"

समीर ने कहा—"तुम अपनी प्रेमिका का ध्यान करो। उसकी साड़ी, उसकी चूड़ी, ब्लाउज़, पाउडर और पफ़.......इन सारी चीजों का ध्यान करो। शायद इससे तुम्हें होश आ जाय।"

प्रभात ने अपनी आँखें बन्द कीं और ध्यान में डूब गया। अब की उसके चेहरे पर प्रसन्नता का भाव था। थोड़ी देर के बाद वह मन्द-मन्द मुस्कराने लगा।

समीर बड़े ध्यान के साथ उसकी ओर देख रहा था। पूछा—"कहो भाई, कैसा हाल है ?"

प्रभात ने मुस्कराते हुए कहा—"बड़ा अच्छा हाल है। वह मेरे ध्यान में आ गई है। वाह, क्या अलौकिक छटा है ! शृङ्गार-टेबल के सामने खड़ी होकर वह पाउडर लगा रही है। उसके हाथों की चूड़ियाँ टुन्न-टुन्न बोल रही हैं जिसे मैं स्पष्ट सुन रहा हूँ। समीर, मुझे ध्यान करने दो। अब मैं होश में आ जाऊँगा।"

समीर ने मुस्कराकर स्वस्ति की साँस ली। बोला—"इतमीनान के साथ खूब ध्यान करो। मैं विघ्न नहीं डालूँगा।"

और प्रभात अपनी आँखें बन्द करके अपनी प्रेमिका के ध्यान में तल्लीन था। उसके होंठों पर मधुर मुस्कान उमड़ रही थी।

काफी समय जा चुका था।

अब वे लोग किसी दूसरे सौरमण्डल से जा रहे थे जिसके बारे में प्रभात का कहना था कि यह उजबक सौरमण्डल है। वहाँ बड़ा विचित्र होता है। अभी दिन है तो अभी रात है। प्रभात इस सम्बन्ध में गीत गाता रहता था कि "अभी-अभी दिन था, अभी-अभी रात है!" वहाँ कहीं-कहीं बादल-से उड़ते हुए नजर आते, मगर उसके आसपास पृथ्वी नहीं दिखलाई देती थी।

प्रभात का होश अब ठिकाने पर आ चुका था। किसी बात की चिन्ता नहीं थी, अगर कभी उसके होश में गड़बड़ी आती तो वह बैठकर अपनी प्रेमिका का ध्यान कर लेता था। इससे सब ठीक हो जाता। अब वह कविता नहीं पढ़ता था। बैठा हुआ रेखागणित के साध्यों को नये किस्म से हल करने का प्रयास करता रहता था।

एक दिन समीर ने कहा—"मालूम होता है कि इस सौरमण्डल में कहीं-न-कहीं पृथ्वी अवश्य होगी?"

प्रभात उत्सुक होकर बोला—"चलो, हम लोग उसी पृथ्वी पर उतर जायँ। कोई किराये का मकान लेकर रहेंगे और खूब टहलेंगे।"

समीर ने पूछा—"क्या वहाँ किराये का मकान मिलेगा भी?"

सहसा उस बैलून में बड़ा भारी झटका आया और खतरे की घण्टी बजने लगी। प्रभात घबराकर अपनी प्रेमिका का ध्यान करने लगा और ढिमला गया। बैलून ने अपनी गति बदल दी और दूसरी ओर उड़ने लगा। समीर ने दूरबीन लगाकर देखा तो पाया कि उसका बैलून किसी धूमकेतु की पूँछ के आकर्षण में आ गया है और उसी के साथ उड़ता जा रहा है। धूमकेतु की पूँछ में लिपटा हुआ बैलून न जाने कहाँ चला जायगा?

सहसा समीर को कुछ खयाल आया। उसने बैलून की गति बदलने वाले बटन को बाईं ओर झुका दिया बैलून बाईं ओर झुका, डगमगाया।

कुछ देर के बाद वह बैलून धूमकेतु की पूँछ से बाहर था।

प्रभात खुशी के मारे उठकर खड़ा हो गया। चहकता हुआ बोला—"हल्लो मिस्टर समीर........चिर्रों!"

दोनों मित्रों ने तपाक् से हाथ मिलाया।

# चार

: १ :

दोनों मित्र नींद में पड़े सो रहे थे। सहसा खतरे की घंटी सुनकर उन लोगों की नींद टूटी। समीर ने हक्काबक्का होकर देखा कि बैलून पूरे वेग से एक नक्षत्र की ओर बढ़ता जा रहा है और आश्चर्य नहीं कि वह उस नक्षत्र से टकराकर टूट भी जाय। उसने बैलून की गति धीमी कर दी और दूरबीन से उस नक्षत्र की ओर देखने लगा। उसे इस बात पर आश्चर्य मालूम हो रहा था कि वह नक्षत्र भी उसकी पृथ्वी के समान ही था। उसी तरह के बादलों का घेरा, उसी भाँति के पेड़ और पर्वत। सब कुछ उसी तरह का है, मगर इतना सुन्दर क्यों मालूम होता है? बादल चित्रों के समान सजे हुए थे। पेड़ इतने सुन्दर कि क्या कहने! वह प्रसन्न हो गया। प्रभात से बोला—"अब हम लोग किसी लोक में पहुँच रहे हैं।"

प्रभात ने चिन्तित भाव से कहा—"क्यों भाई, वहाँ किराये का मकान मिल जायगा?"

समीर ने कहा—"अजी, मकान नहीं मिलेगा तो किसी पेड़ के नीचे रहेंगे। कम-से-कम हमारे पैर धरती को तो छू सकेंगे।"

प्रभात ने भी गम्भीर भाव से कहा—"कम-से-कम हमारे पैर धरती को तो छू सकेंगे।"

समीर ने दूरबीन से देखना आरम्भ किया। बोला—"यह संसार हम लोगों के संसार से सुन्दर है, बहुत ही सुन्दर।"

"सुन्दर!" प्रभात नाच उठा। नाचता हुआ कहने लगा—"कोलम्बस ने एक नई दुनिया का पता लगाया था। हमने उससे भी बहुत दूर एक नई दुनिया का पता लगाया है। लो, नाच देखोगे? देखो नाच!"

और वह मस्ती के साथ नाचने लगा।

: २ :

एक पहाड़ी के नीचे उन लोगों ने अपना बैलून उतारा। उन लोगों को आश्चर्य मालूम हो रहा था कि यह दुनिया उन लोगों के संसार के समान ही है, पर कितनी सुन्दर! सब कुछ ऐसा लगता है मानो चित्र में देख रहे हैं।

कुछ दूर चलने के बाद उन लोगों ने एक सफेद दाढ़ी वाले व्यक्ति को देखा। वह चुपचाप खड़ा था। उसकी आँखें भावपूर्ण थीं—बड़ी-बड़ी; श्वेत वस्त्र, गोरा शरीर, बर्फ के समान शुभ्र दाढ़ी। देखकर मन में भक्ति आती थी। ऐसा लगता था मानो यह आदमी वाल्मीकि और व्यास के समान है। वह चुपचाप खड़ा था। आँखें किसी भावना में डूबी हुई अर्द्धोन्मीलित थीं। मूर्ति के समान वह अचल खड़ा था।

प्रभात को भ्रम हुआ कि यह आदमी किसी कुशल मूर्तिकार की बनाई हुई कोई प्रतिमा है। उसने चाहा कि छू-छूकर उसके बनाने वाले मूर्तिकार की तारीफ करे। जब वह उस मूर्ति के ऊपर अपना हाथ फेरने लगा तो उस मूर्ति ने भी आँखें फाड़कर एक बार आश्चर्य से प्रभात की ओर देखा, फिर समीर की ओर देखकर मुस्कराते हुए अपनी मीठी आवाज़ में कहा—"सलामुन्-अलैकुम्!"

प्रभात घबराकर एकाएक अलग हो गया और गौर से उस मूर्ति की ओर देखने लगा। समीर आश्चर्य से झुक गया और बन्दगी बजाता

हुआ बोला—"वालेकुम्-अस्सलाम् ! कहिए, सब खैरियत तो है ? बाल-बच्चे सब आनन्द से हैं न ?"

उस आदमी ने मानो समीर की बातें सुनीं ही नहीं। उसने उसकी ओर एकटक दृष्टि से देखते हुए कहा—"मा-इस्मोक ?"[1]

उस वृद्ध का प्रश्न सुनकर समीर चुप हो गया और प्रभात की ओर देखने लगा। प्रभात ने कहा—"जब से हम लोग चले हैं तब से हमारा 'स्मोकिंग' छूट ही गया है। अब हम लोग 'नो-स्मोक' हैं।"

कुछ ऐसा लगा मानो उस वृद्ध पर प्रभात की इस बात का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा हो। उसने फिर एकटक देखते हुए कहा—"मिन ऐना जेत ?"

दोनों मित्र चुप थे और एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे।

"मा इस्मो क़रियतिक् ?" वह वृद्ध उन लोगों की ओर एकटक देखता हुआ पूछ रहा था।

ये लोग हक्के-बक्के थे। कुछ समझ में आता ही नहीं था कि किस तरह बातें करें। सहसा प्रभात ने कहा—"भई, हम लोग इस आदमी से हिन्दी में बातचीत शुरू करें। देखना चाहिए उसका असर क्या होता है ?"

वह आगे बढ़ा। बूढ़े के सामने अपने हाथ जोड़ दिए और अपनी सारी ताक़त लगाकर हिन्दी में बोला—"प्रणाम !"

वृद्ध मुस्कराया। उसकी उजली दाढ़ी के भीतर से उजले दाँत चमक उठे। उसने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"नमस्कार !"

प्रभात ने कहा—"महोदय, क्षमा करेंगे। हम लोग भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में बातें कर रहे हैं जिस भाषा को वहाँ के मालिक लोग निकम्मी भाषा कहा करते हैं। इसका कारण है हुजूर, कि हिन्दी में बोलने से राष्ट्रीय संस्था को वोट नहीं मिलता। हाँ, राष्ट्रभाषा की निन्दा कर देने से सभी लोग राष्ट्रीयता के पक्ष में हो जाया करते हैं।"

---

१. वह अरबी बोल रहा था।

उस वृद्ध ने मुस्कराकर कहा—"तुम लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हो। मैं हिन्दी में अनुवादित हो चुका हूँ।"

"हिन्दी में अनुवादित हो चुके हैं, इसका क्या मतलब ?" समीर ने आश्चर्य से पूछा।

उस वृद्ध ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहा—"मैं अलीबाबा हूँ। अलीबाबा और चालीस चोर की कहानी तो तुमने पढ़ी होगी।"

"आप ही अलीबाबा हैं ?" प्रभात ने चहककर कहा—"बचपन में आपकी कहानी पढ़ी थी। आपसे मिलने की हमारी बड़ी इच्छा थी। ओह, आपसे मिलकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है! अजी वाह, बड़े मियाँ, क्या आप बतौर निशानी के अपनी दाढ़ी का एक बाल उखाड़कर मुझे दे सकते हैं ?"

अलीबाबा ने कहा—"इसके लिए तुम्हें मर्जीना से मुलाकात करनी होगी।"

समीर ने उछलकर कहा—"तो मर्जीना भी यहीं है ?"

अलीबाबा ने कहा—"हाँ-हाँ, मर्जीना भी यहीं है। हम लोग यहाँ अलिफलैला मुहल्ले में रहते हैं। वहाँ तुम्हें सिन्दबाद जहाजी, चिराग रगड़ने वाला अलादीन वगैरह सब-किसी से भेंट हो जायगी।"

प्रभात ने पूछा—"वहाँ कुछ खाने को भी मिलेगा ? विटामिन की गोलियाँ खाते-खाते अब जी ऊब उठा है।"

अलीबाबा ने कहा—"जरूर खाने को मिलेगा। ऊँटनी के दूध में बनी हुई सेवइयाँ और फलूदा तुम्हें खिलाऊँगा। इसके अलावा और भी जो चाहो पुलाव, ज़रदा, मुतअन........सब-कुछ। मगर तुम लोगों को मैं नहीं पहचान पाता। ऐसा क्यों ?"

प्रभात ने कहा—"हम लोग कल्पना के बने हुए नहीं हैं, इसी कारण आप मुझे पहचान नहीं पाते।"

अलीबाबा को आश्चर्य हुआ। उसने समीर को अच्छी तरह टटोलकर कहा—"क्या तुम लोग सचमुच कल्पना के बने हुए नहीं हो ? तुम

लोगों से मिलकर मुझे निहायत खुशी हुई। मर्जीना भी तुम लोगों को देखकर खुश होगी।"

प्रभात ने कहा—"हम लोग मुल्के हिन्द से चलकर इस मुल्के अदम में पहुँचे हैं।"

"मुल्के अदम नहीं, यह कल्पनालोक है। यह तुम्हारी दुनिया के साथ भी है और उससे अलग भी। इसे वाल्मीकि और व्यास, होमर और शेक्सपियर ने बनाया है," अलीबाबा ने कहा।

फिर अलीबाबा ने उन दोनों आदमियों को बगल में ले लिया और चलते-चलते कहने लगे—"ओह, तुम लोगों को देखकर आज मर्जीना किस तरह खुश होगी!"

तीनों चलने लगे। वाह, क्या सड़क थी! मालूम होता था कि इसे इञ्जीनियरों ने नहीं बल्कि चित्रकारों ने बनाया है। उस सड़क पर किसी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अधिकार न होकर किसी चित्र-एकाडमी का आधिपत्य मालूम होता था। उन सड़कों के भीतर से गुलाब और केवड़े की गन्ध आती थी। दोनों मित्र मगन मन चले जा रहे थे।

सहसा उन लोगों ने देखा कि एक आदमी विचित्र पोशाक पहनकर विचित्र तरह से अपने घोड़ों को दौड़ाता हुआ चला आ रहा है। उन लोगों को मजा आ गया। वे उसे उसी तरह देखने लगे जिस प्रकार सरकस के जोकर को देखते हैं। इतने में घोड़ा दौड़ाता हुआ वह सवार आकर उन लोगों के पास पहुँच गया और अपने बर्छे से प्रभात के ऊपर ऐसा वार किया कि अगर वह हट नहीं गया होता तो प्रभात की सन्ध्या आ जाती। वह घुड़सवार यह देखने के लिए रुका भी नहीं कि उसके चलाये हुए भाले का क्या परिणाम हुआ। वह जिस तरह घोड़ा दौड़ाता हुआ आया था उसी तरह घोड़े को दौड़ाता हुआ निकल गया। प्रभात खड़ा होकर थर-थर काँप रहा था। उसकी घिग्घी बँध गई थी। समीर ने बिगड़कर कहा—"यह कौन है? अगर अभी इसका भाला लग जाता तो मेरे मित्र की क्या हालत होती?"



अलीबाबा ने कहा—"इसे नहीं जानते ? यह डान-क्विक्ज़ोट है। बस बराबर इसी तरह उत्पात मचाता फिरता है।"

समीर ने पूछा—"यहाँ पुलिस नहीं रहती ? पुलिस को चाहिए कि इसे रोके।"

अलीबाबा ने कहा—"पुलिस इधर नहीं रहा करती। पुलिस केवल शेरलाक-होम और मिस्टर ब्लेक के कार्यों में सहायता दिया करती है या बाधा पहुँचाया करती है। इसके अलावा उसका और कुछ भी काम नहीं है।"

अब प्रभात का होश कुछ-कुछ दुरुस्त हो चुका था। उसने हिम्मत बाँधकर कहा—"यहाँ भाला कितने दामों में मिला करता है ?"

अलीबाबा ने कहा—"क्या जानें, मुझे मालूम नहीं।"

प्रभात ने पूछा—"और घोड़ा किस कीमत पर मिलता है ? अब मैं भी उसी तरह घोड़े पर चढ़कर और हाथ में भाला लेकर उस आदमी

से युद्ध करूँगा। मुझे बदला लेना है। मैं बदला लूँगा।"

अलीबाबा ने कहा—"डान-क्विक्ज़ोट तो भाला चलाकर चलता हो गया। उसे पकड़ना अब मुश्किल है। अब पीछे से गधे पर सवार होकर उसका मित्र शंकोपंजा आ रहा होगा। उसी को पकड़कर जितना चाहो बदला ले लो। इसके लिए भाले की जरूरत भी नहीं है। चपत मारते ही वह बिलबिलाने लगता है।"

मगर शंकोपंजा से बदला लेने के लिए वहाँ कोई रुका नहीं। हालाँकि प्रभात का विचार था कि एक पक्कड़ शंकोपंजा को उसके गधे के साथ घसोड़ देना चाहिए, मगर समीर सोच रहा था कि न जाने आगे कौनसी बला सिर आ जाय। यहाँ से खिसक जाना ही ठीक है। उसने अलीबाबा का हाथ पकड़ लिया और कहा—"चलो बूढ़े बाबा!"

अलीबाबा कहते जा रहे थे कि हम लोग डान-क्विक्ज़ोट से अक्सर कहते हैं कि कहीं जाकर वह नेता हो जाय। नेता होने पर न तो जिरह-बख्तर पहनना पड़ता है और न भाला चलाने का काम होगा। सिर्फ जीभ चलाकर ही सारी दुनिया को जीत लेने की बहादुरी है। जिससे चन्दा लो उसी की हजामत उल्टे छुरे से बनाकर छोड़ दो। मगर वह डान-क्विक्ज़ोट किसी की बात मानता ही नहीं।

सहसा उन लोगों ने देखा कि एक पेड़ के नीचे बहुत से हिरन खड़े हैं और एक ब्राह्मण वहाँ पर आग सुलगाकर चमड़े के ऊपर लिखी हुई पोथी पढ़ रहा है। जब वह एक पन्ना पढ़ लेता तो उसे आग में डाल देता और फिर दूसरा पन्ना पढ़ने लगता। समीर ने उसके पास जाकर पूछा—"भाई, तुम कौन हो?"

उस आदमी ने कहा—"मैं गुणाढ्य नामक ब्राह्मण हूँ। किसी समय मैंने पिशाची भाषा में बृहत्कथा लिखी थी, उसी को बैठा-बैठा जला रहा हूँ।"

समीर गुणाढ्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उससे पूछने लगा—"महाशय, आप बृहत्कथा के भीतर हैं या बृहत्कथा से बाहर हैं?"

गुणाढ्य ने कहा—"महोदय, मैं आपको ठीक-ठीक नहीं बतला सकता कि मैं बृहत्कथा के भीतर हूँ या बृहत्कथा से बाहर हूँ। कदाचित् आपको राजा सातवाहन भी इसका ठीक पता नहीं दे सकते।"

समीर ने कहा—"आजकल मैं यहीं आ गया हूँ। अलीबाबा के यहाँ ठहरा हुआ हूँ। अवसर मिला तो आपसे फिर भेंट करूँगा।"

वह गुणाढ्य को प्रणाम करके वहाँ से चल पड़ा। अलीबाबा ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"बच्चे, अगर तुम यहाँ कुछ दिन रह गए तो अभी बहुत-कुछ देखोगे। वह गुणाढ्य ब्राह्मण तो अपने दरवाजे पर ही बैठा है। अगर उसके भीतर जाओ तो वहाँ तुम्हें एक-से-एक चीजें दिखलाई पड़ेंगी। हमारे अलिफलैला के मुहल्ले से वह कुछ कम नहीं है। वहाँ चोरियाँ भी बहुत होती हैं। एक बार महाकवि भास वहाँ घुस गए और वासवदत्ता को वहाँ से ले भागे। उदयन जब उनके पीछे-पीछे पुकारता हुआ दौड़ा तो उन्होंने सब कुछ को सपने में डाल दिया।"

प्रभात ने समीर के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"कहीं हम लोग किसी पागलखाने में तो नहीं घुस आए हैं?"

समीर ने कहा—"घबराओ नहीं, मैं सब कुछ समझता हूँ।"

## : ३ :

अलीबाबा की वह मर्जीना दाई बड़ी चुलबुली थी। चेहरा तो ऐसा भोला था मानो कुछ समझती ही नहीं हो, मगर जब वह चलती थी तो उसकी बोटी-बोटी फड़कने लगती थी। उसके शरीर का रंग मोती की तरह दमकता था। जब वह चलती तो जैसे बिजली चल जाती। वहाँ लोगों का आवागमन खूब होता। खाने के समय अक्सर सिन्दबाद जहाजी और चिराग रगड़ने वाला अलादीन भी पहुँच जाता था। खाते-खाते बातें भी चला करती थीं। एक दिन प्रभात ने अलादीन से कहा—"अगर मेरे पास भी आपकी तरह का ही कोई चिराग होता तो मेरी

जिन्दगी बहुत आसान हो जाती ।"

सिन्दबाद जहाजी ने कहा—"और अगर मेरी तरह आपको भी तकलीफ की यात्रा करनी पड़ती तो आपको जिन्दगी भार हो जाती ।"

समीर ने कहा—"मगर मुझे तो आपकी यात्रा में अपनी यात्रा से भी अधिक रस मिलता है । ऐसा क्यों ?"

सिन्दबाद ने कहा—"सुख और दुख दोनों में रस है । मगर वह रस कहाँ है, उसे ठीक से उद्घाटित करना ही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है ।"

सहसा लोगों ने देखा कि एक कुत्ता वहाँ पर कुछ सूँघता हुआ पहुँच गया । उसके पीछे-पीछे एक नौजवान अंग्रेज भी दौड़ता हुआ वहाँ आ गया । अलादीन ने पुकारकर कहा—"टिंकर, तुम यहाँ क्यों आये ? मैं यह बात तुम्हारे मालिक ब्लेक से कहूँगा ।"

टिंकर ने कहा—"मिस्टर ब्लेक ने ही मुझे यहाँ भेजा है । अली-बाबा के यहाँ कुछ अतिथि आये हैं । वे उन लोगों से मुलाकात करना चाहते हैं ।"

मर्जीना ने प्रभात और समीर को दिखलाकर कहा—"यह देखो, वे मेहमान ये हैं । आप इन्हें मिस्टर ब्लेक का सन्देश सुना दें ।"

टिंकर ने उन दोनों से हाथ मिलाकर कहा—"आप लोगों को देख-कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मेरे मालिक मिस्टर ब्लेक आपसे मिलने को बहुत उत्सुक हैं । वे पास ही बेकर स्ट्रीट में रहते हैं ।"

समीर ने प्रसन्न होकर कहा—"उनसे मिलने को मैं अभी आया ।"

## : ४ :

मिसेज़ बर्डेल उन दोनों मित्रों को एक कमरे में ले गई और बैठा दिया । थोड़ी देर के बाद एक अंग्रेज उस कमरे में आया । वह बहुत ही कीमती सूट पहने हुए था । उसके आते ही ये दोनों मित्र उठकर खड़े हो गए और उन लोगों के खड़े होते ही मिस्टर ब्लेक एक कुरसी पर बैठ गए ।

समीर ने मुस्कराकर पूछा—"मालुम होता है कि आप ही मिस्टर ब्लेक हैं।"

"हाँ, मैं ही मिस्टर ब्लेक हूँ," उस आदमी ने कहा—"आपको जो कुछ भी कहना हो वह एकदम संक्षेप में कहिए। मेरे पास समय की बड़ी कमी है।"

समीर ने कहा—"आपसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।"

प्रभात अपनी आदत के अनुसार हाथ मिलाने के लिए बढ़ाता हुआ बोला—"हल्लो मिस्टर ब्लेक............चिर्रो !"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"केवल हाथ मिलाने से ही नहीं होता। हाथ तो पीछे भी मिलाया जा सकता है। पहले आप लोग यह बत-लावें कि आपको क्या कहना है। मगर हाँ, संक्षेप में कहिए। देखिए, मेरे पास समय की बड़ी कमी है। प्रायः हर रोज एक चोर या खूनी को पकड़ना पड़ता है।"

समीर ने कहा—"जी नहीं, मेरे पास तो आपसे कहने के लिए कोई बात ही नहीं।"

मिस्टर ब्लेक ने आश्चर्य से सिर हिलाना शुरू किया और कहने लगे—"ऐसा आदमी तो कभी मेरे यहाँ आया ही नहीं जिसे कुछ भी कहना नहीं हो। जरूर आप लोगों का किसी ने खून किया होगा।"

समीर ने कहा—"जी नहीं, अभी तक हम लोगों का खून किसी ने नहीं किया है।"

मिस्टर ब्लेक बोले—"तो आप लोगों के किसी सम्बन्धी का खून हुआ होगा।"

इस बात पर प्रभात और समीर दोनों ने अस्वीकारात्मक सिर हिलाया। जब समीर ने सिर हिलाना बन्द कर दिया तब प्रभात ने एक बार फिर सिर हिलाकर कहा—"नहीं, हम लोगों के किसी सम्बन्धी का खून नहीं हुआ है।"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"तब तुम लोगों ने किसी का खून किया

होगा।"

"जी नहीं, हम लोगों ने भी किसी का खून नहीं किया है।"

तब मिस्टर ब्लेक ने बिगड़कर कहा—"फिर तुम लोग यहाँ आये क्यों?"

आखिर इस बात पर प्रभात को ताव आ गया। उसने कहा—"सुनिए मिस्टर ब्लेक, यह रंग झाड़ना छोड़िए। हम लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया कि आपके पास बहुत से मामले हैं और आपको ज़रा भी फुरसत नहीं है। मगर तीन-चार घण्टे गप-शप तो आप जरूर ही कर सकते हैं।"

मिस्टर ब्लेक ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—"मेरे पास बहुत से मामले हैं और दम मारने की भी फुरसत नहीं; मगर तीन-चार घण्टे तो गप-शप ज़रूर ही कर सकता हूँ। कहिए, किस विषय पर शुरू हो?"

मिस्टर ब्लेक के इस परिवर्तन को देखकर समीर को बहुत ही आश्चर्य हुआ। जिस आदमी को दम मारने की भी फुरसत नहीं वह तीन-चार घण्टे तक गप करने को राजी हो जाय। किमाश्चर्यमतःपरम्! उसने कहा—"मिस्टर ब्लेक, आप बहुत पढ़े जाते हैं, इसका कारण क्या है?"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"हिंसा की वृत्ति। आदमी के मन में जो हिंसा की वृत्ति होती है वही मेरे उपन्यासों के द्वारा चरितार्थ होती है। आदमी या तो पक्का चोर या हत्यारा होना चाहता है या फिर एकदम चतुर पुलिस। कहने का मतलब कि जिसको पुलिस होने का मौका नहीं मिला वह चोर या हत्यारा हो जाता है। अगर किसी चोर को चोरी का 'चान्स' नहीं बैठा तो वही कुशल पुलिस बन जाता है। ये ही सारे कारण हैं कि लोग मेरे उपन्यासों को खूब मन लगाकर पढ़ते हैं।"

समीर ने पूछा—"मिस्टर ब्लेक, मगर आपने शादी क्यों नहीं की?"

ब्लेक इस बात पर हँसने लगे। बोले—"शादी करने से मैं जासूस के रूप में दिखलाई दूँगा नहीं। उस समय मैं लोगों के सामने एक प्रेमी के रूप में आ जाऊँगा। तब भी अगर आप ग़ौर से मेरे उपन्यासों को पढ़ते हैं तो आप मजे में अन्दाज़ कर सकते हैं कि मिस अमेलिया के प्रति मेरा एक झुकाव है। मैंने कई बार उसे गिरफ्तार करके जेल में डलवाया है। वह चतुर चोर और मैं परम जासूस। फिर भी मेरे हृदय में उसके लिए प्रेम है—एकदम बारीक प्रेम। जासूस तो चोर से प्रेम करेगा ही। जो पूरे तौर पर चोरी-चमारी को जानता-समझता हो वही तो जासूस हो सकता है। आह, मिस अमेलिया, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ!"

मिस्टर ब्लेक ने फुसफुसाकर लम्बी साँस ली और चुप हो गए। उनकी आँखों में आँसू भर आए।

इसी समय पीछे से किसी ने मधुर कण्ठ से कहा—"आप लोग



हाथ उठा लें वरना गोली मार दूँगी ।"

मिस्टर ब्लेक ने तो उलटकर देखा भी नहीं, चुपचाप अपने दोनों हाथ ऊपर उठा दिए। इन दोनों मित्रों ने भी हाथ उठाकर पीछे की ओर देखा तो पाया—बाईस साल की एक खतरनाक तरुणी, खतरनाक रेशमी पोशाक, खतरनाक रूप, खतरनाक सेंट की खुशबू और हाथ में खतरनाक पिस्तौल। प्रभात की तो डर से हालत खराब हो गई। समीर ने साहस करके पूछा—"आपकी यह पिस्तौल असली है या नकली ? हमारे यहाँ यार लोग चार आने वाली नकली पिस्तौल से भी हजारों का रोजगार कर लेते हैं। अगर आपकी पिस्तौल भी उसी तरह की हो, तो बतला दीजिए। मैं नाहक घबराया जा रहा हूँ।"

उस स्त्री ने एक कुरसी खींच ली और उस पर बैठती हुई बोली—"मेरे पास एकदम असली पिस्तौल है—विंचेस्टर। एक गोली मार दूँ तो पेट में आर-पार छेद हो जाय।"

समीर ने पूछा—"मगर आप हैं कौन ?"

"मैं अमेलिया हूँ," उस स्त्री ने कहा—"तुमने मेरा नाम सुना होगा। चोरी, हत्या, फरेब आदि में मेरे समान कोई नहीं।"

"नाम तो आपका मैंने सुना है," समीर उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखता हुआ कहने लगा—"मगर आप गोली क्यों मारती हैं ? अगर आप नजर से भी मार दें तो आदमी उठकर पानी नहीं माँगेगा। कृपा करके पिस्तौल को अलग कर लें।"

अमेलिया ने पिस्तौल सामने से हटा दिया। अब प्रभात सुगबुगाया। अभी तक वह सिकुड़दम होकर बैठा हुआ था। अब जरा फैल गया। इत्मीनान के साथ लम्बी साँस ली और अपनी जेब को टटोलता हुआ धीरे-धीरे मुस्कराने लगा।

अमेलिया ने कहा—"मैंने सुना है कि अलीबाबा के खजाने में बहुत धन है। मैं उसे चुराना चाहती हूँ। आप दोनों आदमी आजकल अलीबाबा के यहाँ रहा करते हैं। आप लोगों को उस खजाने का रहस्य

मालूम होगा।"

"क्यों नहीं, जरूर मालूम है," समीर ने निश्चित भाव से कहा— 'खुल-शीशम' कह देने से ही उस खजाने का फाटक खुल जाता है। यह भेद तो हम लोग बहुत दिनों से जानते थे।"

अमेलिया ने आश्वस्त होकर कहा—"अच्छी बात है, अब आज किसी वक्त फुरसत से इस बात को आजमाऊँगी।"

फिर वह मुस्कराने लगी तो उसे मुस्कराती हुई देखकर प्रभात और भी अधिक मुस्कराने लगा। अमेलिया वहाँ से जाने के लिए उठ गई।

सहसा मिस्टर ब्लेक ने कहा—"रुको!" और वह रुक गई। प्रश्नसूचक दृष्टि से मिस्टर ब्लेक की ओर इस तरह देखने लगी जिस दृष्टि में डकैती और प्रेम दोनों भरे हुए थे। मिस्टर ब्लेक के दोनों गाल केक की तरह लाल हो गए। उन्होंने कहा—"अब प्रयत्न बेकार है। अलीबाबा ने अपने सारे रुपये बैंक में जमा कर दिए हैं। उस खजाने में अब कुछ भी नहीं है।"

"तब?" अमेलिया ने प्रश्न किया और स्वयं उसका उत्तर भी दिया—"तब मैं उस बैंक को भी लूटूँगी।"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"बैंक के डाइरेक्टरों से अगर बचेगा तब तो तुम लूटोगी। वहाँ बचता ही कहाँ है? बैंक और बीमा कम्पनियों में, इसके अलावा लिमिटेड कम्पनियों में रुपये तो बहुत आते हैं, मगर वहाँ के डाइरेक्टर और मैनेजिंग डाइरेक्टरों की लूट से कुछ भी लूटने को बच नहीं पाता। इसलिए तुम्हारी मेहनत बेकार जायगी।"

बेचारी अमेलिया का चेहरा उतर गया। हाथ से हैण्डबेग खोलकर उसने आइना निकालकर अपना चेहरा देखा, होठों पर लिपस्टिक लगाया, उसके बाद अपने नाखूनों को देखने लगी कि नेल-पालिश ठीक लगी हुई है या नहीं। फिर उसने एकाएक झटकारकर अपना सिर हिलाया और अपने कटे हुए मुलायम केशों को ठीक करती हुई बोली— "देखिए मिस्टर ब्लेक, आप इन मैनेजिंग डाइरेक्टर्स और लिमिटेड

कम्पनियों को गिरफ्तार क्यों नहीं करते ?"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"उन्हें मैं इसलिए गिरफ्तार नहीं करता कि वे कानून के अनुसार चोरी करते हैं। उन लोगों की चोरी को पकड़ सकना कठिन है।"

अमेलिया ने पूछा—"तो फिर तुम मुझे ही गिरफ्तार क्यों किया करते हो ?"

"क्योंकि तुम कानून की उपेक्षा करके चोरी करती हो।"

समीर ने कहा—"आप ठीक कहते हैं मिस्टर ब्लेक, अभी ही इनके ऊपर कई धाराएँ लगाई जा सकती हैं। पहला 'ट्रेसपास', जबरन दूसरे के घर में घुस आना। दूसरा यह भयानक रूप। इसमें धारा ४२० के अनुसार मुकदमा चल सकता है। तीसरे, हाथ में बिना लाइसेन्स की पिस्तौल। 'आर्म्स-एक्ट' के मुताबिक यह फेक्ट है कि आपके ऊपर मुकद्मा चल जायगा। फिर आपने पिस्तौल दिखलाकर हम लोगों को धमकाया। यह भी भारी जुर्म है। इस तरह आपको अगर सजा सुनाई जाय तो पन्द्रह-बीस साल की सजा मजे में हो सकती है।"

मिस्टर ब्लेक ने पूछा—"तुम वकील हो क्या ? या डिप्टी मैजिस्ट्रेट हो ?"

समीर ने कहा—"नहीं-नहीं, मैं डिप्टी मैजिस्ट्रेट नहीं। मैं एक भावी आई० ए० एस० हूँ जो भूतपूर्व में नहीं हो सका। मेरे साथ न पैरवी थी और न मैं किसी का रिश्तेदार ही था। आप तो जानते ही हैं। जासूस के लिए यह समझना मुश्किल नहीं। मगर उस समय इण्डियन पीनल-कोड की कुछ धाराएँ तो पढ़नी ही पड़ी थीं।"

मिस अमेलिया ने अपनी आँखें नचाईं, फिर मुँह बिचकाने लगी। उसके बाद उपेक्षा के भाव से उसने कहा—"इण्डियन पीनल-कोड कुछ भी कहता हो, इसकी मुझे परवाह नहीं। लेकिन जैसा कि मुझे बतलाया गया है कि डाइरेक्टर और मैनेजिंग डाइरेक्टर्स मुझसे भी बड़े अपराधी हैं, तो उन्हें क्यों गिरफ्तार नहीं किया जाता ? सज़ा उन्हें

मिलनी चाहिए थी।"

अमेलिया की इस बात का उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। उसकी आँखों में घृणा का तीव्र भाव दिखलाई दे रहा था। उसका चेहरा तन्दूर की तरह लाल हो गया था और उसने घृणा की दृष्टि से देखते हुए धिक्कार-भरे स्वर में कहा—"मिस्टर ब्लेक, तुम बड़े कायर हो। अगर तुम्हें चोरों को पकड़ने का शौक हो तो असली चोरों को पकड़ो।"

मिस्टर ब्लेक ने अपना सुनहरा चश्मा उतारकर उसे पोंछते हुए कहा—"सच्चे चोरों को पकड़ने की मेरी कोई शक्ति ही नहीं। असली चोरों के ऊपर ही सच्चे लोगों का भाग्य निर्भर करता है। वे चोर पुलिस और जासूसों से बहुत ही अधिक बड़े होते हैं। बहुधा उनकी कृपा पर ही पुलिस और जासूसों का भाग्य निर्भर करता है। मैं उन्हें पकड़ने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आज तुम्हें ही पकड़कर सजा दिलाऊँ।"

यह कहते हुए मिस्टर ब्लेक उठ गए। चश्मे को टेबल पर रख दिया और लपककर अमेलिया को पकड़ना चाहा। मिस अमेलिया सड़-से उछल गई और वहाँ से भाग चली। आगे-पीछे वे दोनों इस तरह दौड़ रहे थे मानो रेस कर रहे हों, मानो उन दोनों को ही कोई पीछे से दौड़ा रहा हो। मिस अमेलिया पेड़ के ऊपर चढ़ गई, तो मिस्टर ब्लेक ने इस तरह पिस्तौल की गोली चलाई कि पेड़ जड़ से उखड़कर उड़ गया। मिस अमेलिया तब डाल पकड़कर लटक गई और हवा में कूद पड़ी। प्रभात और समीर ने देखा कि अब उसका फ्राक पैराशूट का काम देने लगा है। जमीन पर पहुँचकर वह गिरी और फिर उठी। अब वह पिस्तौल चला रही है और मिस्टर ब्लेक अपना बचाव कर रहे हैं। पिस्तौल की आवाज और धुएँ से उनका कुत्ता टाइगर बार-बार उछलता हुआ भौंक रहा है। टिंकर तो घबराता हुआ मानो नाच-सा रहा है और चिल्ला-चिल्लाकर ब्लेक से कह रहा है—"मालिक, बच जाइए। मालिक, बच जाइए!" मिस्टर ब्लेक को देखने पर उस समय ऐसा लगता था

मानो वे सरकस दिखला रहे हों। कभी वे एकदम उछल जाते और कभी बिलकुल धरती पर सो जाते। कभी दाएँ भागते और कभी बाएँ भागते। मगर कल्पना के जासूसों को कभी गोली नहीं लगती, इसलिए मिस्टर ब्लेक को भी नहीं लगी। कल्पना के जासूस हमेशा बच जाते हैं, इसलिए मिस्टर ब्लेक भी बचते चले गए। अमेलिया तब तक गोली चलाती रही जब तक उसके पास कारतूस रहे। जब उसका कारतूस समाप्त हो गया तब उसने अपनी पिस्तौल जमीन पर फेंक दी और मिस्टर ब्लेक को ललकारकर बोली—"आओ, तुम मेरे सामने आ जाओ!"

इस बात को सुनते ही मिस्टर ब्लेक घबरा गए और उसके सामने जाने से कतराने लगे। अमेलिया की इस ललकार से वे सिहर उठे।

यह सब-कुछ मिस्टर ब्लेक के घर के सामने के अहाते में हो रहा था। प्रभात और समीर भी घटनाओं के साथ-साथ खिंचे हुए इस तरह चल रहे थे जिस प्रकार चुम्बक के साथ-साथ लोहे के टुकड़े या बिल के साथ-साथ वाउचर चला करते हैं। सहसा वहाँ एक दूसरा तमाशा हो गया। प्रभात ने एक पुराना पीतल का दिया निकाला और उसे जमीन में रगड़ दिया। उसके रगड़ते ही एक बार बिजली-सी चमकी और एक बहुत ही बड़ा दानव आकर खड़ा हो गया। बड़े-बड़े उसके केश हवा में लहरा रहे थे। उसकी आँखें भिंची हुई थीं और वह उजबक के समान हीही-हीही हँस रहा था। उसके होंठ हिल रहे थे और वह कह रहा था—"मुझे हुक्म दीजिए! मुझे जो हुक्म दीजिए, मैं वही करूँगा। जैसा हुक्म वैसा काम!"

प्रभात ने अमेलिया की ओर इशारा करके कहा—"पकड़ो उस औरत को!"

वह दानव अमेलिया की ओर देख-देखकर अट्टहास करने लगा और अमेलिया की पिलही चमकने लगी। उसके बाद वह जैसे ही अमेलिया की ओर लपका वैसे ही वह जान लेकर भागी। आगे-आगे अमेलिया



और पीछे-पीछे वह हँसता हुआ दानव। ऐसा लगता था मानो मामूली लिफाफे के पीछे-पीछे रजिस्टर्ड पत्र जा रहा हो। ऐसा भी लगता था जैसे कुर्की के पीछे-पीछे वारंट दौड़ रहा हो। थोड़ी देर तक आगे-पीछे दौड़ते हुए वे दोनों व्यक्ति आँखों से ओझल हो गए।

इधर मिस्टर ब्लेक ने घुड़ककर प्रभात से कहा—"इडियट, यह तुमने क्या किया ?"

प्रभात ने कहा—"जब मैं आपके यहाँ चला आ रहा था तब मुझसे मर्जीना ने कहा कि ब्लेक जासूस के यहाँ जा रहे हो। मिस्टर ब्लेक के साथ रोज तरह-तरह की घटनाएँ घटती रहती हैं। इसलिए अपने साथ अलादीन के इस चिराग को लेते जाओ। इसे रगड़ने पर तुम्हें यह काम दे देगा।"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"तुम तो मिस मर्जीना के फेर में पड़ गए। हाय, अब मेरी अमेलिया का क्या होगा ? किस उपाय से अब उसे

छुड़ाऊँ ?"

मिस्टर ब्लेक असमंजस में पड़कर सिर हिलाने लगे।

प्रभात को आश्चर्य हो रहा था। अभी की ही बात है कि अमेलिया मिस्टर ब्लेक के ऊपर दनादन पिस्तौल से फायर कर रही थी और ये मिस्टर ब्लेक हैं कि उसे छुड़ाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। उसने कहा—"उस अमेलिया को छुड़ाने की जरूरत ही क्या है? वह तो आपके ऊपर गोली चला रही थी।"

मिस्टर ब्लेक ने कहा—"इडियट, तुम जानते नहीं, मैं अमेलिया से प्रेम करता हूँ।"

प्रभात ने पूछा—"मगर वह तो आपके ऊपर गोली चला रही थी। अगर उसकी गोली से आपका बंटाढार हो जाता तब आप उससे किस तरह प्रेम करते ?"

मिस्टर ब्लेक ने प्रभात की ओर घृणा की दृष्टि से देखा, फिर विरक्त-से होकर बोले—"हम लोग एक-दूसरे के ऊपर गोली भी चलाते हैं और आपस में प्रेम भी करते हैं।"

प्रभात ने कहा—"यह जंगली प्रेम है। असभ्य लोग ऐसा प्रेम करते हैं।"

मिस्टर ब्लेक ने तड़पकर कहा—"यही सबसे ऊँचा रोमान्स है। तुम मिस अमेलिया को बचा लो, वरना ठीक नहीं होगा।"

"अच्छी बात है," कहकर प्रभात ने उस दिये को फिर से रगड़ दिया। अट्टहास करता हुआ वह दानव फिर आ पहुँचा। प्रभात ने कहा—"जाओ, उस मिस अमेलिया को लाकर मिस्टर ब्लेक के सिर के ऊपर पटक दो।"

"जो हुक्म !" दानव ने सिर झुकाकर प्रभात को अभिवादन किया और फिर हँसता हुआ अमेलिया को लाने के लिए उड़ गया। मिस्टर ब्लेक रह-रहकर अपना सिर सहलाने लगे और सोचने लगे कि वह दानव अमेलिया को मेरे सिर पर जोर से पटकेगा या धीरे से। सहसा मिस्टर

ब्लेक के मन में एक विचार आया और वे तुरन्त नीचे सिर और उपर पैर करके खड़े हो गए। बोले—"अब वह किस तरह अमेलिया को मेरे सिर पर पटक सकता है ?"

: ५ :

प्यारे पाठको और पाठिकाओ, आओ-आओ; लपककर देखो। देखो, वह घोड़े पर सवार होकर कौन जा रहा है ? वह घोड़ा अपने सवार को लेकर ईशानकोण की ओर बेतहाशा दौड़ रहा है। उस घोड़े की सरपट चाल मैदान में पटापट बज रही है। ऐसा लगता है मानो मैदान कोई खल्वाट खोपड़ी है और खटाखट कोई उस पर तबला बजा रहा है। नदियाँ पार हो जाती हैं, सरोवर छूट जाते हैं, पेड़-पौधे छूटते जा रहे हैं और वह घोड़ा सनासन, पटापट, खटाखट दौड़ता जा रहा है। अरे, यह देखो। उस घोड़े पर तो समीर बैठा हुआ है। समीर, वही हम लोगों का पूर्व-परिचित समीर। उसके केश हवा में उड़ रहे हैं और उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। वह समीर ही है जो सरपट घोड़े को उड़ाता हुआ चला जा रहा है और वह देखो, उस घोड़े की दुम पकड़कर लटकता हुआ वह आदमी कौन है ? वह तो वही प्रभात है। उसे नहीं पहचानते ? पाठको, आप लोग उसे जरूर पहचानते हैं। वह प्रभात उस घोड़े की दुम को पकड़कर लटकता हुआ चला जा रहा है। ओह, यहाँ कौनसी रहस्यपूर्ण घटना हो गई जिसके कारण समीर अरबी घोड़े को खुरासानी ऊँट की तरह उड़ाता हुआ चला जा रहा है। अवश्य कोई घटना घट गई है। आइए पाठक, हम लोग इस रहस्य का अनुसन्धान करें।

ऊपर आसमान में बादल उड़ रहे हैं, अन्तरिक्ष में हवा उड़ रही है और धरती पर घोड़ा उड़ता चला जा रहा है। वह घोड़ा हिम्मत के साथ दौड़ता जा रहा है और अब समीर हिम्मत के साथ उस घोड़े को रोकता जा रहा है। जब लगाम को पूरी तरह खींच दिया गया तब घोड़ा रुक गया। उस समय झुटपुटा हो रहा था। आसमान पर चाँद और तारे

दिखलाई देने लगे थे। चाँद और सितारों को देखकर उस समय ऐसा लगता था मानो कोई कम्युनिस्ट चाँदी की हँसिया लेकर सितारों के खेत को काटने के लिए निकला हो। घोड़े को खड़ा करके समीर ने उसे एक पेड़ से बाँध दिया और उसके लिए घास खोजने को निकला। इसी समय प्रभात ने उसके पास जाकर उसे प्रणाम किया। प्रभात को देखते ही समीर प्रसन्न हो उठा और प्रसन्नता के स्वर में चहककर बोला—"मैं तो तुम्हें सवेरे से ढूँढ़ रहा हूँ। तुम अभी तक थे कहाँ ?"

प्रभात ने कहा—"मैं तो बराबर तुम्हारे साथ ही रहा हूँ। मैंने सोचा था कि चाहे जहाँ भी तुम मुझे खोजने के लिए जाओ, मैं वहीं जाकर तुम्हें मना कर दूँ कि मुझे खोजने की बिलकुल जरूरत नहीं। इसलिए मैं बराबर तुम्हारे घोड़े की दुम के साथ ही रहा।"

समीर ने झल्लाकर कहा—"मगर तुम थे कहाँ ? इतनी देर से कर क्या रहे थे ?"

"इसका बड़ा लम्बा किस्सा है। तुम बैठो तो मैं स्थिर होकर तुम्हें सुनाऊँ।" यह कहता हुआ प्रभात जमीन पर बैठ गया और अपना किस्सा सुनाने लगा। समीर कुछ देर त. तो खड़ा-खड़ा उसकी कहानी सुनता रहा, फिर वह भी थककर धरती पर बैठ गया। प्रभात अपनी कहानी इस तरह सुना रहा था—"भाई समीर, क्या कहूँ और क्या न कहूँ। विचित्र यह देश है, विचित्र यहाँ के लोग हैं। अजीब तमाशा है। यहाँ वे लोग ही रहते हैं जो कभी हुए ही नहीं; मगर देखो तो ऐसा लगता है कि जैसे सचमुच यहाँ लोग रहा करते हैं और यहाँ घटनाएँ भी होती रहती हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोग कहाँ पहुँच गए। कल रात जब मैं सोया हुआ था तो क्या अनुभव करता हूँ कि कोई आदमी मुझे सोते हुए से जगा रहा है। मैंने सोचा कि यह कौन है ? यह क्या चाहता है ? क्यों मुझे यह सोते हुए से जगाता चला जा रहा है ? इसकी इच्छा क्या है ? लेकिन जब आँखें खोलता हूँ तो आश्चर्य से अवाक् हो जाता हूँ। क्या तुम मेरी बात का

विश्वास करोगे ? तुम जरूर विश्वास करोगे। जानते हो, कौन मुझे जगा रहा था ? वह मैं था। वह बिलकुल मैं था जो मुझको जगा रहा था। बड़ा अचम्भा मालूम हुआ। मैंने पूछा—"भाई, तुम कौन हो ? तुम मुझसे क्या चाहते हो ?"

तब मैं ने मुझ से कहा—"अरे मूर्ख, मैं न तेरा भाई हूँ और न मामा। मैं हूँ मैं और तुम भी मैं हो।"

मैं ने सम्भलकर कहा—"मगर तुम मुझसे चाहते क्या हो ?"

मैं ने मुझ से कहा—"चाहता तो कुछ भी नहीं। यही कुछ भेंट-मुलाकात करने की तबीयत थी। सो इसलिए चला आया।"

मैंने कहा—"मेरा तो खयाल है कि बराबर तुमसे भेंट-मुलाकात होती रहती है। फिर इतनी दूर से आने की जरूरत क्या थी ? न होता तो पत्र लिख देते।"

मैं ने मुझ से कहा—"अरे मूर्खराज, मैं तेरी भलाई के विचार से तुझसे बातचीत कर रहा हूँ। तुम जिस संसार में आये हो वह कल्पना का संसार है।"

मैंने कहा—"जानता हूँ।"

मैं ने मुझ से कहा—"अरे मूर्खराज, जानता है फिर भी नहीं जानता। कल्पना के संसार में रोज रोमान्स होते रहते हैं। मगर फिर भी तुम ऐसे उल्लू हो कि रोमान्स की खोज ही नहीं करते। आओ, मैं तुम्हें रोमान्स दिखलाता हूँ।" उसके बाद हम लोग रोमान्स देखने के लिए चल पड़े। उस रात के समय भी ऐसा लगता था मानो दिन ही है। मैंने देखा कि लैला के विरह में मजनू तड़प रहा है और सिनेमा के तर्ज पर गा रहा है—"लैला लैला पुकारूँ मैं वन में, लैला बसी मोरे मन में।" उसके बाद आगे बढ़ता हूँ तो देखता हूँ कि हीर और राँझा तड़प रहे हैं। ओह, उनकी तड़पन देखकर मेरे मन में होता था कि कहीं वारिसशाह मिल गए तो उनकी खबर ले लूँ। आगे चला तो देखता हूँ कि एक कब्र है। वहाँ रोमियो मरा पड़ा है और जूलियट उसके विरह में

इस प्रकार धीरे-धीरे विलाप कर रही है जिस प्रकार गिरजाघर में लोग प्रार्थना किया करते हैं। उसके बाद·······उसके बाद······ जूलियट ने छुरी ली और अपनी छाती में·······अरे बाप, एक ही साथ हत्या और आत्महत्या ! कहने का मतलब कि इण्डियन पीनल कोड की धारा ३०६ और धारा ३०२ के अनुसार एक ही साथ काम हो गया। मुझे तो ऐसा लगा मानो मैं शेक्सपीयर का नाटक देख रहा होऊँ। मगर बात सचमुच सच थी। मैं ने कान पकड़कर मुझ से कहा—"चाहे जो हो, मैं रोमान्स नहीं कर सकता। इसमें बड़ी तकलीफ होती है। रोमान्स करने से तो कहीं अच्छा है कि कन्ट्रोल के डिप्टी साहब की खुशामद करे और एक किरासिन तेल की दुकान खोलकर बैठ जाय। मगर रोमान्स से क्या फायदा ? इससे तो कुछ भी लाभ नहीं।"

मेरी बात सुनकर मैं मुझ से बिगड़ उठा। कहने लगा—"तुम हो उल्लू, अगर रोमान्स नहीं किया तो कुछ भी नहीं किया।"

मैंने कहा—"मगर रोमान्स करने से तो बराबर रोना पड़ता है।"

मैं ने मुझ से कहा—"मगर रोने में भी जो मज़ा है वह मज़ा कहकर समझाया नहीं जा सकता। अगर उसमें मज़ा नहीं होता तो लोग रोमान्स ही क्यों किया करते ?"

मैंने कहा—"भाई, मैं तो आधुनिक टाइप का रोमान्स बहुत पसन्द करता हूँ—रेलगाड़ी के सेकेण्ड क्लास का रोमान्स। चकाचक साड़ी, झकाझक ब्लाउज, फकाफक रेलगाड़ी चली जा रही है। उसके बाद वे उस स्टेशन पर उतरीं और मैं उस स्टेशन पर उतरा। फिर जब शादी होती है तो हम समाज से द्रोह करते हैं। तब द्रोह करके भी हम शादी तो जरूर ही कर लेते हैं। फिर शादी होती है। सामने एक स्त्री आती है जिसके चेहरे पर यवनिका पड़ी हुई होती है। उस यवनिका के उठाते ही मालूम हो जाता है कि जिससे मैंने सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में प्रेम किया था उसी लड़की को पत्नी के रूप में प्राप्त कर लिया। बस, इससे ज्यादा वाला रोमान्स बड़ा भयानक होता है। इस

तरह के रोमान्स में पड़ने से आदमी क्लर्क होने के लायक भी नहीं रह पाता।"

इस पर मैं मुझ से बहुत बिगड़ गया और वहाँ से चला गया। अब मेरी हालत न पूछो। मैं मैं को खोजता हुआ इधर-से-उधर भटकने लगा। जाते-जाते मैं एक टापू में पहुँचा। वहाँ क्या देखता हूँ कि एक आदमी जटाजूट धारण किये हुए मछली भूनकर खा रहा है। मैंने ऐसा साधू कभी देखा तक नहीं था। उसे प्रणाम करके बैठ गया। बोला—"बाबाजी, आप किस पन्थ के मानने वाले हैं?" मैंने तो ऐसा साधू आज तक नहीं देखा था कि जो जटाजूट भी रखता हो और उसी के साथ-साथ मछली भूनकर भी खाया करता हो।"

उस बाबाजी ने घुड़ककर कहा—"क्या तुमने मुझे नानक-पन्थी या आर्यसमाजी समझ रखा है? मैं वह नहीं हूँ। मेरा नाम जानते हो? मैं राबिन्सन क्रूसो हूँ। इस टापू में इस आशा से पड़ा हूँ कि कोई जहाज आवे तो यहाँ से निकलकर चला जाऊँ। मगर क्या करूँ, जहाज कोई आता नहीं। तब से जो पड़ा हूँ सो पड़ा हूँ।"

मैंने झुककर राबिन्सन क्रूसो की चरण-धूलि ली। उसके बाद स्मृति के लिए उनसे दाढ़ी के दो बाल माँग लिए। उसके बाद पूछा—"महोदय, श्री राबिन्सन क्रूसो, आप एक बात मुझे बतला सकते हैं?"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"एक बात क्यों, मैं दो बातें बतला सकता हूँ। मगर तुम पूछो तो सही।"

मैंने पूछा—"महोदयजी, रोमान्स पर आपका क्या खयाल है?"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"भाई, रोमान्स तो मैं जानता ही नहीं। मुझे तो पता भी नहीं कि रोमान्स जलचर है या सरिसृप। मैं यह भी नहीं कह सकता कि रोमान्स पूरब की तरफ रहता है या पच्छिम की तरफ।"

मुझे उनकी बात से आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा—"जब आपकी जिन्दगी में यहाँ रोमान्स ही नहीं, तो फिर किस मज़ा को पाकर आप



जी रहे हैं ?"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"मज़ा की बात तुम भले ही लिये फिरते हो। मुझे तो तकलीफ में ही मज़ा मिलता है। बस इसी तकलीफ को ढोने के लिए जी रहा हूँ।"

मैंने कहा—"आप ठीक कहते हैं महाशय, रोमान्स में भी तकलीफ होती है। इतनी तकलीफ होती है कि कोई पोटेशियम् सायनायड खा लेता है, कोई गले से फाँसी लगाकर लटक जाता है। मेरा खयाल है कि जिनके जीवन में कोई कष्ट नहीं वे कष्ट उठाने के लिए ही प्रेम किया करते हैं। प्रेम करने पर किसी को सुख नहीं मिलता।"

मेरी बात सुनकर राबिन्सन क्रूसो चकित हो उठे। दौड़कर अपनी झोंपड़ी में घुस गए और अपना चश्मा उठा लाए। फिर चश्मे को लगा लिया और बड़े गौर से मेरी ओर देखने लगे। उन्होंने चश्मा लगाकर सिर से पैर तक मुझे देखा। उसके बाद बोले—"तुम ठीक कहते हो ?

क्या प्रेम करने से किसी को सुख नहीं मिलता ?"

मैंने कहा—"जी नहीं, किसी को सुख नहीं मिलता। कवि ने इसी बात पर कहा है कि "प्रीति करि काहू सुख न लह्यो !"

मेरी बात सुनकर राबिन्सन क्रूसो बड़े प्रसन्न हुए। एक चट्टान पर मौज से बैठ गए और झूम-झूमकर गाने लगे—

*प्रीति करि काहू सुख न लह्यो !*

उसके बाद उन्होंने एकाएक सिर उठाया। मुझसे बोले—"सुनते हो जी ?"

मैंने कहा—"जी, सुन रहा हूँ !"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"अब मैं भी प्रेम करूँगा। यह भी अच्छी तरह देखूँगा कि प्रेम करने में कितना कष्ट होता है।"

उनकी बात से मैं चौंक उठा। यह प्रेम भी क्या बीमारी है कि प्रेम के नाम से ही पैदा हो जाती है। मैंने कहा—"अच्छी बात है, तो आप प्रेम कीजिए, मैं यहाँ से चलता हूँ।"

मगर जैसे ही मैं चलने को हुआ कि राबिन्सन क्रूसो ने डाँटकर कहा—"कहाँ जाते हो ? पहले यहाँ सुने जाओ।"

यह कहकर वे उठे और बड़े ज़ोरों से मेरी कलाई पकड़ ली। बोले—"तुम्हें यहाँ से नहीं जाना होगा !"

अब तुमसे क्या बतलाऊँ ! उन्होंने मेरी कलाई इतने जोर से पकड़ी थी कि मेरी कलाई में लोच आ गई। मुझे डर लगने लगा कि ये कहीं मुझसे ही प्रेम न करने लगें। यहाँ आकर तो मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया। अब क्या करूँ ? मैंने कहा—"आप प्रेम करना चाहते हैं तो ठाट से प्रेम कीजिए। मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा ? मुझे यहाँ से जाने दीजिए।"

"नहीं !" राबिन्सन क्रूसो ने इस तरह मेरी कलाई को कसकर दबाया कि तमाम नसें तड़तड़ाने लगीं। आँखों में आँसू उबल आए। मैंने पूछा—"तो आप मुझसे चाहते क्या हैं ?"

राबिन्सन क्रूसो ने अबकी मेरी दोनों कलाइयों को पकड़ लिया और पूछा—"अब तुम बतलाओ कि मैं इस निर्जन टापू में किससे प्रेम करू ?"

मैंने अपनी कलाइयों को छुड़ाकर कहा—"अगर मैं जानता होता तो स्वयं ही प्रेम क्यों न कर लेता ? आजकल तो हर तरह का प्रेम चलता है।"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"मगर मुझे बतलाओ कि मैं किससे प्रेम करूँ ?"

मैंने कहा—"मुझे तो मालूम नहीं कि आप किससे प्रेम करें। इस बात का पता लगाने दीजिए, तब मैं कल आकर आपसे बतलाऊँगा कि आपको किससे प्रेम करना चाहिए।"

राबिन्सन क्रूसो ने कहा—"अच्छी बात है। कल आकर जरूर बतला देना कि मुझे किस तरह काम करना चाहिए।"

"सुनते हो भाई समीर, उसके बाद मैं वहाँ से चला आया। आकर देखता हूँ कि तुम मुझे खोजने के लिए निकल पड़े हो। तुम्हारा अरबी घोड़ा उस समय उसी तरह चल रहा था जिस प्रकार पहले गियर में मोटर चला करती है। तब मैंने सोचा कि अगर तुम मुझे खोजने के लिए निकलो और फिर कहीं न पाओ, तो तुम्हें निराशा होगी। इसलिए मैं घोड़े की दुम पकड़कर लटक गया कि तुम चाहे जिधर भी जाकर मुझे खोजना शुरू करो मैं तुम्हें वहीं मिलूँगा।"

सारी बातें सुनकर समीर ने कहा—"हम लोग बड़ी गड़बड़ी में फँस गए हैं। बिना रोमान्स किये ही यहाँ यह हालत होती है, तो फिर अगर रोमान्स किया जाय तो न जाने क्या गति हो जायगी !"

उसके बाद रात आई तो दोनों सो रहे।

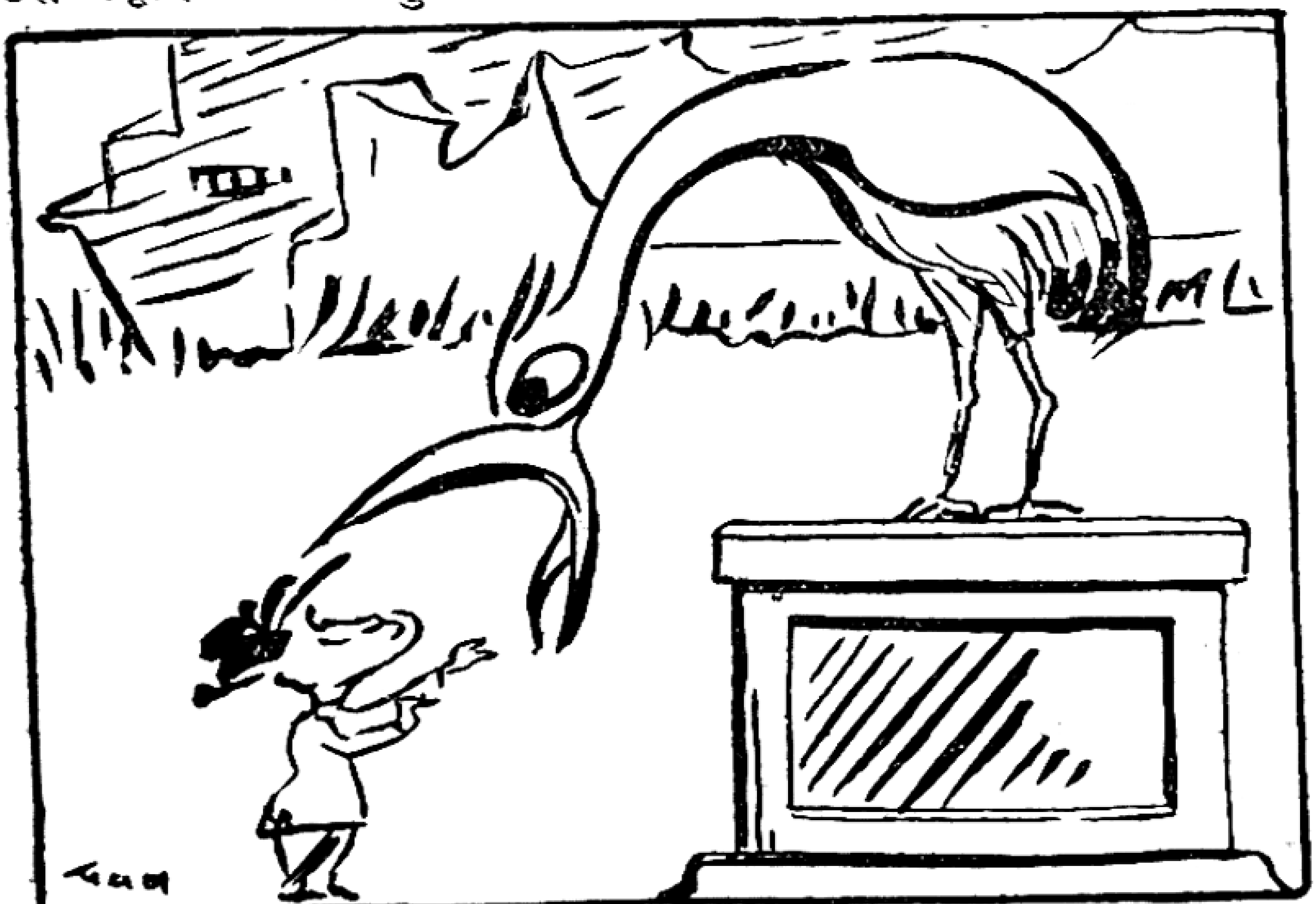
## : ६ :

चाँदनी रात। आसमान में चाँद इस तरह चला जा रहा था मानो वह

कोई चीज़ खरीदने के लिए उत्साह के साथ बाजार जा रहा हो। तारे इस तरह टिमटिमा रहे थे जिस प्रकार राजनीति के सिद्धान्त तरह-तरह से टिमटिमाते रहते हैं। रात इस तरह की शोभायमान मालूम हो रही थी मानो वह प्रचार और पब्लिसिटी हो। सहसा प्रभात की नींद टूट गई। उसकी बगल में समीर सोया हुआ था। उसने सोचा कि इस बेचारे की नींद क्यों खराब की जाय। जब लेटने पर भी नींद नहीं आने लगी तब प्रभात उठकर टहलने लगा। कुछ दूर तक जाता और फिर वहाँ से लौटकर चला आता। इसी तरह कुछ समय बीत गया, मगर प्रभात की तबीयत न जाने क्यों घबरा रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि यहाँ से कहीं चला जाय। मगर जाय तो कहाँ जाय? फिर जाय ही क्यों? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। आज उसे मैं से भी भेंट नहीं हुई। न जाने वह भी कहाँ चला गया था। ऐसा गया कि फिर लौटा ही नहीं। सहसा उसकी दृष्टि समीर के अरबी घोड़े पर पड़ी तो वह सोचने लगा कि क्यों न इसी घोड़े पर चढ़कर इधर-उधर की सैर कर ली जाय। वह तुरन्त उस घोड़े के पास चला गया और उसे चुमकार-पुचकारकर देखने लगा कि कहीं यह घोड़ा काटता तो नहीं है। जब चुमकारने-पुचकारने से घोड़े ने किसी प्रकार का विरोध प्रदर्शित नहीं किया तो वह उसे डाँटने लगा। जब डाँटने पर भी न घोड़े ने दुलत्ती झाड़ी और न उसे काटा ही, तब प्रभात ने निश्चय कर लिया कि यह घोड़ा काटने वाला नहीं है। अगर इस पर चढ़कर कहीं चला जाय तो कोई हर्ज नहीं होगा। उसने घोड़े के मुँह में लगाम डाल दिया और उसे कसकर चढ़ बैठा। उसके बाद वह घोड़ा उसी तरह दौड़ने लगा जिस प्रकार वह दिन के समय दौड़ रहा था।

जाते-जाते वह घोड़ा एक खण्डहर के पास पहुँच गया और वहाँ जाकर खड़ा हो गया और हिनहिनाने लगा। प्रभात को भी ऐसा लगा कि इस खण्डहर के भीतर कोई ऐसी बात जरूर है जो उसे देखनी चाहिए। वह ठीक-ठीक कह नहीं सकता था कि वहाँ बात क्या है। मगर कोई

बात जरूर है और प्रभात को वहाँ जाना होगा ही। उसे ऐसा भी लगा मानो वह इस खण्डहर की सैर कई बार कर चुका है, मगर याद नहीं आता कि वह कब यहाँ आया था और कब इस खण्डहर की सैर की थी। उसने घोड़े को एक पेड़ से बाँध दिया और इधर-उधर घूमकर उस खण्डहर को देखने लगा। पुराना कोई किला था जो जगह-जगह से धँस गया था। इधर-उधर देखते हुए उसने देखा कि एक पुराना चबूतरा है और उसके ऊपर एक बगुले की विशाल मूर्ति संगमरमर पत्थर से बनी हुई है। प्रभात को उस बगुले की कारीगरी बहुत पसन्द आई और वह उस चबूतरे के पास पहुँच गया। जैसे ही वह चबूतरे के दाहिनी ओर



जाकर खड़ा हुआ वैसे ही उस बगुले ने घूमकर दाहिनी ओर अपना मुँह कर दिया। प्रभात ने उससे पूछा—"भाई, तुम इस तरह हिलते-डुलते क्यों हो? स्थिर होकर खड़े रहो तो मैं तुम्हारे बनाने वाले कलाकार की तारीफ भी करूँ।"

किन्तु उस बगुले ने प्रभात की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

उसने अपना मुँह फाड़ दिया। प्रभात ने कहा—"हाँ-हाँ, तुम्हारी चोंच भी मैं देख रहा हूँ। वाह, क्या चोंच है!"

इतने में उस बगुले ने सिर झुकाया और चोंच के अन्दर प्रभात को दबोच लिया। अररर करते हुए गड़ाप से प्रभात उसके भीतर जा पड़ा।

"अजीब हालत है! यहाँ के बगुले भी बेकायदा-बेफायदा काम किया करते हैं।" बड़बड़ाता हुआ प्रभात धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ और उसने देखा कि वह एक कमरे के अन्दर बन्द है। सामने एक दरवाजा था। उसे खोलकर देखा तो वह खुल गया। प्रभात ने आप-ही-आप कहा—"तब कोई हर्ज नहीं है। सवेरे उठकर देखा जायगा कि इस कम्बख्त बगुले के पेट के भीतर क्या-क्या है।"

सचमुच उस बगुले के पेट में सैकड़ों एकड़ जमीन थी। प्रभात ने सवेरे उठकर देखा कि यहाँ बड़ी बहार है। चारों ओर सेब और सतालू के जंगल थे। हर तरफ घास की तरह गोभी और तरबूज के पौधे थे। खाने का वहाँ आराम था। किसी बात की तकलीफ नहीं हो सकती थी। वहाँ उस जंगल के बीचोंबीच एक चश्मा बहता था जिसका पानी दर्पण के समान चमक रहा था। प्रभात को ऐसी खुशी मालूम होने लगी मानो वह स्वास्थ्य सुधारने के लिए किसी सेनिटोरियम में आ गया हो। उसके बाद जब वह उस चश्मे को पार करके आगे बढ़ा, तो क्या देखता है कि एक सेब के पेड़ के नीचे एक स्त्री इस तरह बैठी हुई है जैसे अशोक-वाटिका में सीताजी बैठी रहती थीं। वह स्त्री बड़ी सुन्दरी है, मगर आजकल की लड़कियों के समान अप-टु-डेट नहीं मालूम होती थी। उसकी नाक में हीरे का बेसर, कानों में कर्णफूल और बाँहों में बाजूबन्द थे। वह रेशमी लँहगा और ओढ़नी पहने हुए बार-बार विलाप कर रही थी—"हा कुँवर वीरेन्द्रनारायण सिंह!"

प्रभात उस स्त्री को वहाँ देखकर चकित हो गया। फिर कुछ प्रसन्नता भी हुई कि चलो, इस निर्जन स्थान में बातचीत के लिए एक साथी तो मिल गया। वह उसके समीप गया और पूछने लगा—"महो-

दया, आप कौन हैं ? यहा कुँवर वीरेन्द्रसिंह कौन हैं ? आप यहाँ क्या करती हैं ? यहाँ कैसे आ गईं ?"

प्रभात की बात सुनकर जब वह स्त्री उत्तर देने लगी तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे सितार बज रहा हो। उसने कहा—"वत्स, तुम्हारे प्रश्न अनेक हैं यथामति मैं उन प्रश्नों का उत्तर दे रही हूँ। तुम्हारा पहला प्रश्न है कि आप कौन हैं। सो मैं तुम लोगों से अपरिचित नहीं। मैं आजकल के हिन्दी-उपन्यास की नायिकाओं की नानी लगती हूँ और मेरा नाम चन्द्रकान्ता है। मैं चार भागों में समाप्त हुई। तब मेरी सन्ततियाँ चौबीस भागों में शेष हुईं। उसके बाद आये भूतनाथ। कई भाग चलने के बाद भूतनाथ ने लेखक को ही समाप्त कर दिया। मैं आजकल इसी तिलिस्म में कैद हूँ। सेब, सतालु और अखरोट का फल खाती हूँ, चश्मे का पानी पीती हूँ और अपने कुँवर वीरेन्द्रसिंह को याद किया करती हूँ।"

प्रभात ने कहा—"मेरा दूसरा प्रश्न था कि कुँवर वीरेन्द्रसिंह कौन हैं।"

चन्द्रकान्ता कहने लगी—"वत्स, वे मेरे प्रेमी हैं और मैं उनकी प्रेमिका हूँ। वे मेरी याद करके लम्बी साँस छोड़ते हैं और मैं उनकी याद में सिसक जाया करती हूँ। आखिर उपन्यास के नायक-नायिका जो काम करते हैं वह हम लोगों को करना ही पड़ता है। कुँवर वीरेन्द्र-सिंह के पास दो ऐयार हैं। एक हैं तेजसिंह और दूसरे देवीसिंह। इधर मेरी दो सखियाँ भी ऐयारिन हैं। एक तो चपला और दूसरी चम्पा। इनमें मैं कुँअरजी को ब्याहूँगी और मेरी सखियाँ ऐयारों के साथ विवाह करेंगी। मगर अभी शादी-ब्याह में देर है। अभी तो चारों ओर ऐयारी चल रही है। मैं आकर इस तिलिस्म में कैद हो गई। मेरी सखियाँ इधर-उधर भटक रही हैं। कुँवर वीरेन्द्रसिंह तिलिस्म तोड़ने वाले हैं। तिलिस्म तोड़ने पर उन्हें मैं मिल जाऊँगी और साथ-ही-साथ दहेज में इस तिलिस्म का माल-खजाना भी उन्हें सब मिल

जायगा। अभी तो मैं विरह की ज्वाला में हूँ। सेब और सतालू खाती हूँ। चश्मे का पानी पीती हूँ और रह-रहकर लम्बी उसासें लिया करती हूँ।"

प्रभात की समझ में कुछ आया और बहुत-कुछ नहीं आया। उसने कहा—"ये ऐयार क्या बला होते हैं? फिर यह तिलिस्म ही क्या चीज़ होती है?"

चन्द्रकान्ता ने कहा—"होता-ओता कुछ भी नहीं, परन्तु कहा जाता है कि ऐयार चाहे जिसका भी वेश बना सकता है और तिलिस्म में जाकर जो चाहे वही फँस सकता है।"

प्रभात ने कहा—"यह तो वैसे ही हुआ जैसे प्राचीन काल के निशाचर माया का वेश बनाकर चला करते थे। माया के हिरन के द्वारा सीता हरी गई थी। आपका हरण ऐयारी के द्वारा कर लिया गया। फिर रामजी के साथ थे लक्ष्मण और हनुमान, इधर आपके कुँवरजी के साथ हैं दो ऐयार। आपके कुँवर वीरेन्द्रसिंह इस तिलिस्म को तोड़ने वाले हैं, उधर रामजी ने रावण का सिर ही तोड़ दिया था। इस तरह का उपन्यास मेरी समझ में नहीं आता।"

चन्द्रकान्ता ने कहा—"वत्स, तुम क्या जानो कि इसमें क्या मज़ा है। तुम लोग आजकल का उपन्यास पढ़ते हो। उसमें न नायिका के यहाँ रोटी पकती है और न नायक को कहीं नौकरी ही मिलती है। फिर भी रोमान्स होता रहता है। इस रोमान्स में मेरा मन नहीं लग सकता। नायक को किसी राजा का बेटा होना ज़रूरी है। पाठकों के लिए भी यह शर्त है कि चावल का भाव कम-से-कम सोलह सेर का हो, तब उपन्यासों का मज़ा है। बिना खाये-पिये उपन्यास पढ़ने का मज़ा ही क्या? उसमें हर जगह हाय-पेट की चर्चा रहा करती है।"

प्रभात ने कहा—"मेरे खयाल से उपन्यासों को जीवन से दूर नहीं जाना चाहिए। आजकल के उपन्यासों में वास्तविकता रहा करती है।"

इस बात पर चन्द्रकान्ता गरम हो गई। तेज आवाज़ में बोली—“मैं इन वास्तविक नायिकाओं को कदापि पसन्द नहीं करती। वे पाउडर लगाती हैं, क्लब और सिनेमा में जाया करती हैं। फिर एक ही साथ कई पुरुषों पर अनुरक्त हो जाती हैं। मैं इस बात को पसन्द नहीं करती। एक नायिका के लिए एक पुरुष बहुत है। इससे ज्यादा पुरुष नहीं चाहिएँ। हम लोगों को पतिव्रता होना भी उचित है।”

प्रभात ने कहा—“महोदया, बिना विवाह के पतिव्रता आप किस तरह हो सकती हैं? यह असम्भव बात है कि पुरानी नायिकाएँ बिना पति के ही पातिव्रत धर्म का पालन करने लगती थीं।”

इस बात पर चन्द्रकान्ता तमककर उठी और एक ओर चली गई।

: ७ :

प्रभात को उस तिलिस्म में तीन-चार दिन बीत चुके थे। अब वहाँ मन नहीं लगता था। चन्द्रकान्ता भी उससे बोलती नहीं थी। वह उसे देखते ही अलग हो जाती और एक किनारे जाकर लम्बी साँस लेकर कहने लगती—“हा कुँवर वीरेन्द्रसिंह, तुम कहाँ हो? जल्दी से आकर इस तिलिस्म को तोड़ डालो!”

इधर-उधर घूमते हुए एक दिन प्रभात ने देखा कि कुछ फावड़े पड़े हैं। उसका चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। उसने सोचा कि इन फावड़ों से इस तिलिस्म को मज़े में तोड़ा जा सकता है। इस विचार से उसने उन फावड़ों को उठा लिया और अपने कमरे में जाने लगा। इसी समय वह क्या देखता है कि एक आदमी उसके पीछे-पीछे दौड़ता आ रहा है। उसने पास आकर कहा—“ये फावड़े हमारे हैं। उन्हें दे दो।”

प्रभात ने पूछा—“आप कौन हैं? यहाँ क्या करते हैं?”

उसने कहा—“मेरा नाम प्रेमशंकर है। मैंने यहाँ पास में ही ‘प्रेमाश्रम’ के नाम से एक आश्रम स्थापित किया है। उसी आश्रम के लिए ये फावड़े हैं जो टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी से खरीदे गए हैं।

आखिर श्रम का महत्त्व इन आश्रमों के द्वारा स्थापित करना ही पड़ेगा। इसी विचार से यह आश्रम है।"

प्रभात ने चकित होकर कहा—"तिलिस्म के पास आश्रम ?"

प्रेमशंकर ने कहा—"तिलिस्म के पास ही तो आश्रम खोलना पड़ा है। बिना ऐसा किये तिलिस्म का जादू दूर नहीं हो सकता। अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, मेरे आश्रम में भरती हो जाओ। वहाँ आराम तो नहीं है, पर जीवन का सधा हुआ उद्देश्य ज़रूर है। जी चाहे चले आओ।"

प्रभात ने सिर हिलाकर कहा—"आश्रम में जाने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। आप उस चन्द्रकान्ता को ही आश्रम में क्यों नहीं ले जाते ? उससे आश्रम की शोभा भी बढ़ती और वह आपके लिए रसोई भी बना दिया करती।"

प्रेमशंकर ने कहा—"भाईजान, चन्द्रकान्ता मेरे आश्रम में नहीं आ सकती। उसका जीवन निरुद्देश्य है। वह अमीर की लड़की है। उसके पास सिवा प्रेम करने के और कोई काम ही नहीं। वह इसी तरह रह जायगी; मगर किसी तरह भी मेरे आश्रम में नहीं आ सकती।"

प्रभात ने कहा—"जब प्रेम करने के सिवा इस राजकुमारी के पास कोई काम नहीं तो फिर यह मुझसे ही प्रेम क्यों नहीं कर लेती ?"

प्रेमशंकर ने कहा—"आखिर वह नायिका जो है। तुम्हारे आधुनिक उपन्यास की नायिकाएँ भी बैंक-बैलेन्स देखे बिना प्रेम नहीं किया करतीं। चाहे तो वे बैंक-बैलेन्स देखती हैं या फिर सिविल-लिस्ट। उसी के अनुसार वे उसी अनुपात में प्रेम किया करती हैं। फिर यह राजा की बेटी तुम्हारे साथ प्रेम किस तरह कर सकेगी ? यह नहीं हो सकता। तुम्हें चाहिए कि तुम आकर मेरे आश्रम में भरती हो जाओ।"

प्रभात ने कहा—"महोदय, मैंने आपसे साफ-साफ कह दिया है कि अभी आश्रम में भरती नहीं होना चाहता। आजकल के उपन्यासों में आश्रम में भरती होने का नियम भी नहीं है। आजकल लोग आश्रमों

को छोड़कर कम्युनिस्ट पार्टी में भरती होते हैं। अभी तो मैं पहले इस तिलिस्म को तोड़ने का प्रयास करूँगा। अगर सफल हो गया तब तो ठीक ही है। न हो सका, तो फिर आकर आपके आश्रम में भरती हो जाऊँगा।"

प्रेमशंकर ने कहा—"अच्छी बात है, मगर मैं अपनी आदत के मुताबिक तुम्हें उपदेश देकर जाता हूँ कि कभी भी उस चन्द्रकान्ता से प्रेम मत करना।"

उसके बाद प्रेमशंकर तो अपने आश्रम में चले गए और प्रभात अपने कन्धे पर फावड़ा लेकर तिलिस्म तोड़ने के लिए इधर-से-उधर घूमने लगा। उस समय वह फरहाद की तरह मालूम होता था जो अपनी शीरीं के लिए नहर की खुदाई करने को निकल गया था। एक-दो जगह उसने फावड़ा चलाकर कोशिश भी की, परन्तु तिलिस्म टूटा नहीं। उलटे प्रभात का हाथ दुखने लगा।

सहसा उस दिन चन्द्रकान्ता स्वयं उसके पास चली आई। उसके केश बिखरे हुए थे और आँखों से चिनगारियाँ छिटक रही थीं। चन्द्रकान्ता ने उसे डाँटते हुए कहा—"अरे मूर्ख, इस तिलिस्म को कुँवर वीरेन्द्रसिंह तोड़ने वाले हैं, फिर तू क्यों इसे तोड़ रहा है?"

प्रभात ने कहा—"अगर मैं ही इसे तोड़ डालूँ तो क्या हर्ज है?"

चन्द्रकान्ता ने कहा—"क्या तुम्हें पता नहीं कि जो आदमी इस तिलिस्म को तोड़ेगा वही मुझे प्राप्त करेगा।"

प्रभात ने कहा—"तो इसमें हर्ज ही क्या है? मैं ही आपको प्राप्त कर लूँगा। आपका ठेका कुँवर वीरेन्द्रसिंह ने थोड़े ही ले रखा है? जो इस तिलिस्म को तोड़ेगा वही आपको प्राप्त करेगा।"

चन्द्रकान्ता ने चिढ़कर कहा—"क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं आज-कल के उपन्यास की नायिकाओं की नानी लगती हूँ? तेरा और मेरा जोड़ ही क्या? कहाँ मैं कुँवर वीरेन्द्रसिंह को चाहने वाली और कहाँ तू? होश में आ! पामर, होश की दवा कर!"

"आप आजकल के उपन्यासों की नानी लगती हैं, यह मैं जानता हूँ," प्रभात ने कहा—"मगर आजकल के उपन्यासों में नाते-रिश्ते का कुछ भी खयाल नहीं किया जाता। आपने 'घेरे के बाहर' पढ़ा है? अगर न पढ़ा हो तो 'पथ की खोज' करें।"



इस बात को सुनकर चन्द्रकान्ता ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अपने सिर का जूड़ा खोल लिया और केश को झटकारकर खड़ी हो गई। उसके बाद उसने बिजली की तेजी से अपनी कमर से कटार निकाल ली और प्रभात से कहा—"पामर, सिंह का आहार गीदड़ नहीं खा सकता। आज मैं तुम्हें मारकर यहीं ढेर कर दूँगी। स्यार कहीं का!"

प्रभात ने कहा—"आप तो खामख्वाह नाराज़ होती जा रही हैं। आपको इस तरह छुरी से नहीं खेलना चाहिए।"

चन्द्रकान्ता ने चिल्लाकर कहा—"क्षत्राणी मौत से नहीं डरा करतीं!"

इस हल्ला-गुल्ला को सुनकर प्रेमशंकर भी अपना आश्रम छोड़कर दौड़ते हुए पहुँच गए। उन्होंने चन्द्रकान्ता को रोककर कहा—"अगर आप प्रेम करने वाले को मार डालेंगी तो कुँवर वीरेन्द्रसिंह अपने जी में क्या कहेंगे ? वे भी सोचने लगेंगे कि जब यह प्रेम करने वाले को मार डालती है तो कहीं किसी दिन उनके ऊपर भी हाथ साफ न कर दे।"

प्रेमशंकर की बात सुनकर चन्द्रकान्ता एकाएक रुक गई। कटार को कमर में खोंस लिया और गाल पर हाथ रखकर खड़ी-खड़ी सोचने लगी कि वह क्या करे। इसी समय प्रेमशंकर ने हाथ पकड़कर प्रभात को खींच लिया और किनारे ले जाकर बोले—"अगर तुम्हें अपनी जान बचानी है तो यहाँ से सीधे भागना शुरू कर दो। अगर कहीं भूतनाथ और तेजसिंह आ गए तो तुम्हें गरम लोहे की तरह पीटना शुरू कर देंगे। इसलिए तुम जल्दी यहाँ से सिर पर पैर रखकर रवाना हो जाओ।"

परिस्थिति अनुकूल न देखकर प्रभात ने ऐसा ही किया। वह वहाँ से सरपट दौड़ पड़ा। दौड़ते······दौड़ते······दौड़ते······उसकी नींद खुल गई और उसने देखा कि वह समीर के साथ सोया हुआ है। पास ही बँधा हुआ अरबी घोड़ा हिनहिना रहा है। प्रभात ने उठते ही कहा—"भाई समीर, अब इस नक्षत्र पर रहना खतरे से खाली नहीं।"

"क्यों ?" समीर ने पूछा।

प्रभात ने कहा—"तुम्हें तो कुछ मालूम नहीं। अभी भूतनाथ और तेजसिंह ऐयार यहाँ आ रहे होंगे और हम लोगों की न जाने क्या दुर्गति कर डालेंगे।"

इतने दिनों से रहता हुआ समीर भी वहाँ से ऊब उठा था। उसने सिर हिलाते हुए कहा—"ठीक कहते हो मित्र, अब यहाँ से निकल जाना ही ठीक होगा। आज ही अपने बैलून को लेकर उड़ चलें।"

प्रभात ने प्रसन्न होकर कहा—"हल्लो मिस्टर समीर, चिरों !"

और उसी दिन समीर और प्रभात बैलून पर सवार थे और उनका बैलून तराजू के पल्ले की तरह डोलता हुआ उड़ा जा रहा था।

# पाँच

: १ :

बैलून की यात्रा इस बार सुखद रही। दोनों मित्र चुपचाप गूँगे की तरह बैलून के भीतर बैठे रहते थे। मालूम होता था कि इन लोगों के भीतर किसी तरह की उत्सुकता बाकी नहीं है। वे आपस में बातचीत भी नहीं किया करते थे। कभी-कभी जब प्रभात का मन आ जाता तो वह बैठा-बैठा बड़े जोर से सिनेमा का गीत गा उठता था, मगर एक पंक्ति गाने के बाद दूसरी पंक्ति उसे याद ही नहीं आती। वे लोग अब इस बात की चिन्ता भी नहीं करते कि किस सौरमण्डल के भीतर से जा रहे हैं। ये बातें जैसे उन लोगों के लिए कोई भी आकर्षण नहीं रखती थीं। नींद आती, सो जाते। भूख लगती तो विटामिन की गोलियाँ खा लेते। जी चाहता तो प्रभात गीत गा लेता। इसके सिवा उन लोगों का कोई भी कार्यक्रम नहीं था। ऐसा लगता था कि बैलून में पड़े रहना अब उनके लिए कोई नई बात नहीं है, जैसे वे किसी दिन इस बैलून में ही पैदा हुए और आज भी उसी बैलून के भीतर बन्द हैं।

सहसा एक दिन उनका बैलून थरथराने लगा। ऐसा लगता था जैसे उस बैलून को जूड़ी आ रही हो या ठण्ड लग गई हो।

"यह क्या बात है ?" प्रभात ने पूछा।

समीर ने कहा—"मालूम होता है कि तुम नहीं समझ सके।"

प्रभात कहने लगा—"क्या जाने, जब इस बैलून के भीतर रहता

हूँ तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि मानो मैं कुछ भी नहीं जानता। उसके बाद जब इस बैलून से बाहर निकलता हूँ तो लगता है कि अब मैं सब कुछ समझ रहा हूँ।"

समीर ने कहा—"मालूम होता है कि अभी हमारा बैलून किन्हीं नक्षत्रों के बीच में पड़ गया है। इसीलिए यह तरह-तरह से हिल रहा है।"

प्रभात ने कहा—"मालूम होता है कि इसे कई आकर्षण खींच रहे हैं। जब आदमी कई स्त्रियों के आकर्षण में पड़ जाता है तो उसका हृदय भी इसी तरह डाँवाडोल होने लगता है।"

समीर ने कहा—"मालूम होता है कि हम लोग शीघ्र ही किसी संसार में पहुँचेंगे।"

प्रभात ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—"चलो, यह भी अच्छी बात है कि स्त्रियों का आकर्षण इस बैलून को नहीं खींच सकता। अगर स्त्रियों का आकर्षण इसे खींच सकता तो यह बैलून पृथ्वी से उड़ता ही नहीं।"

इसी समय उस थरथराते हुए बैलून में एक झटका सा लगा। उस झटके की झोंक में प्रभात एकदम उछलकर समीर के कन्धे पर जा चढ़ा। उसके बाद वह बैलून एक ओर का रास्ता पकड़कर उड़ने लगा। प्रभात ने उसके कन्धे पर से उतरकर कहा—"अब हम लोगों ने एक मार्ग पकड़ लिया।"

समीर ने कहा—"हम लोग शीघ्र ही किसी पृथ्वी पर पहुँचने वाले हैं।"

प्रभात बोला—"मगर कहीं हम लोग घूम-फिरकर उसी कल्पना के नक्षत्र पर पहुँच गए तो बड़ा गड़बड़-घोटाला हो जायगा। मैंने मर्जीना के दिये हुए उस चिराग को न जाने कहाँ खो दिया, सो अब याद ही नहीं आता।"

समीर ने कहा—"मगर मुझे तो याद है कि तुमने उस चिराग को

उसी दिन मर्जीना के हाथ में वापस कर दिया था।"

"मैंने वापस कर दिया था?" प्रभात अपना सिर टटोलकर सोचने लगा कि मुझे यह याद क्यों नहीं आता कि मैंने उस चिराग को वापस कर दिया था। सहसा उसने सिर उठाकर समीर से पूछा—"जब मैंने उसे चिराग वापस किया तो उसने मुझे धन्यवाद दिया था या नहीं?"

समीर ने कहा—"नहीं, उसने तुम्हें कोई धन्यवाद नहीं दिया। चिराग लिया और लेकर रख दिया।"

प्रभात ने तब अपना सिर हिलाया—"यही कारण है कि मुझे याद नहीं आता कि मैंने उसका चिराग वापस कर दिया था। अगर उसने धन्यवाद दिया होता तो यह बात मुझे हर समय याद रहती कि मैंने उसका चिराग वापस कर दिया है।"

समीर ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह दूरबीन निकालकर देखने लगा कि आखिर उन लोगों का बैलून किस तारे की ओर जा रहा है। उसने दूरबीन के भीतर देखते हुए कहा—"मालूम होता है कि हम लोग शीघ्र ही कहीं पहुँचने वाले हैं। मगर यह तो विचित्र टेढ़ा-मेढ़ा नक्षत्र है। कुछ समझ में नहीं आता कि यह कैसा विचित्र स्थान है।"

प्रभात ने कहा—"चलो दोस्त, फिक्र मत करो। हम लोगों के चरण तो किसी तरह धरती का स्पर्श कर लें।"

वह आप-ही-आप हँसने लगा। उसकी मुस्कराहट बन्द होती ही नहीं थी।

## : २ :

जब उन लोगों ने अपना बैलून धरती पर उतारा तो वहाँ पाँच-सात आदमी खड़े थे। वहाँ एक विचित्र प्रकार की गरमी पड़ रही थी। जैसे ही ये बैलून से बाहर निकले कि उन लोगों ने अपना सिर झुकाया। प्रभात ने अकड़कर पूछा—"आप लोग क्या चाहते हैं?"

उन लोगों ने कहा—हम लोग होटलों के प्रतिनिधि हैं। आप लोग होटल में तो अवश्य ही ठहरेंगे। मगर अब सवाल यह है कि आप किस तरह के होटल में ठहरना पसन्द करेंगे। आपको हिंसक होटल पसन्द है या अहिंसक ?"

समीर ने कहा—"भाई, हम लोगों को आपके देश की कोई भी बात मालूम नहीं। आप लोग मुझे चाहे जहाँ ठहरा दें।"



तब एक आदमी आगे बढ़ आया और कहने लगा—"महोदय, अभी हम लोगों के अहिंसक होटल का मुकाबिला कोई भी होटल नहीं कर सकता। वहाँ का किराया भी कम है। चार आना पैसा फेंकिए और साल-भर के लिए अहिंसक होटल में भरती हो जाइए। चार आने की जब हम लोग आपको रसीद देंगे उस रसीद में ही साफ-साफ लिखा रहेगा कि यह आदमी चवन्नी देते ही सत्यवादी और अहिंसक दोनों हो गया है। जैसे ही आप उस होटल का चार आना किराया देंगे वैसे ही

आपकी बुद्धि विशाल हो जायगी और आप दूसरों को उपदेश देना शुरू कर देंगे। आप फिर सिद्धान्त की बातें इस तरह छूटकर बतलाना शुरू करेंगे कि जिसका ठिकाना नहीं।"

समीर ने कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि चार आना देते ही आदमी सत्यवादी और अहिंसक किस तरह हो जाता है ? अगर वह चार आने न दे, तब क्या वह सत्यवादी और अहिंसक नहीं हो सकता ?"

उस आदमी ने कहा—"जो आदमी होटल का किराया चार आना न दे वह किसी तरह भी सत्यवादी और अहिंसक नहीं हो सकता। हाँ, किसी तरह भी वह सत्यवादी और अहिंसक नहीं हो सकता।"

समीर ने सवाल किया—"अगर वह आदमी सच बोलता हो और अहिंसा से रहता हो ?"

उस आदमी ने चश्मा निकालकर अपनी आँख में लगाया, फिर समीर की ओर देखता हुआ बोला—"सत्य बोलना या अहिंसा का पालन करना, यह शर्त की बात नहीं है। शर्त तो यह है कि जो चार आने पैसे दे वही सत्यवादी और अहिंसक हो जाता है।"

समीर को उसकी कोई भी बात समझ में नहीं आ रही थी। उसने पूछा—"अगर वह झूठ बोले और आदमियों का खून चूसा करे तब भी उसे आप अहिंसक और सत्यवादी कहेंगे ?"

उस आदमी ने डटकर कहा—"जरूर, चार आना देने के साथ ही वह सत्यवादी और अहिंसक हो गया। इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। फिर चाहे वह झूठ बोले या लोगों को मारता फिरे, इससे कोई बहस नहीं। उस होटल में जो जाता है वह सत्यवादी और अहिंसक हो ही जाता है।"

प्रभात ने शंका प्रकट करते हुए कहा—"इस तरह के नियम से वह चार आना देने वाला क्या सोचेगा ?"

प्रभात की बात सुनते ही वह होटल वाला आदमी खिलखिलाकर हँसने लगा। उसने हँसते हुए कहा—"मालूम होता है कि आप लोग

किसी ऊटपटाँग जगह से आ रहे हैं। यहाँ चार आना देने के बाद फिर सोचने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। हमारे होटल में रहने वालों को सोचने की कोई जरूरत ही नहीं। वहाँ रहकर अपना दिमाग काम में लाना ही नहीं पड़ता। वहाँ सोचने का काम कुछ खास-खास लोगों के जिम्मे है। केवल उन लोगों को ही सोचने-समझने का सारा अधिकार दिया हुआ है।"

समीर ने चकित होकर कहा—"अजी वाह, तब तो आपका होटल बिलकुल प्रजातन्त्र है!"

उस आदमी ने कहा—"जी, बिलकुल प्रजातन्त्र। न सोचने की जरूरत है और न समझने की। जिसे कह दिया गया वही नीति है, जिस बात को मान लिया गया वही धर्म है। ऐसा बढ़िया अहिंसक होटल आपको कहीं मिल नहीं सकता।"

प्रभात इन लोगों की बातें सुन रहा था। उससे रहा नहीं गया। उसे अभी केवल भोजन से दिलचस्पी हो रही थी। वह कुछ खाना चाहता था। उसने पूछा—"क्यों भाई साहब, आपके होटल में किस तरह का खाना मिलता है।"

"खाना चाहे जैसा भी मिले, लेकिन आपको सस्ता भोजन नहीं मिल सकता," उस आदमी ने बड़े गर्व से प्रभात की ओर मुँह करके कहा। "सस्ता भोजन ही सारी बुराइयों की जड़ है। इससे बीमारी पैदा होती है, आलस्य उत्पन्न होता है। संसार की सारी खराबियाँ सस्ते भोजन से उत्पन्न हुआ करती हैं। इसलिए हम लोगों ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि आपको किसी भी तरह कहीं भी सस्ता भोजन नहीं मिल सके। कई जगह तो हमने ऐसा उपाय किया है जहाँ आदमी भोजन कर ही नहीं पाता। वहाँ भोजन ही आदमी को खा जाता है।"

प्रभात ने चकित होकर कहा—"वाह!"

उसने कहा—"अभी इतने पर ही आप वाह-वाह करने लगे! हमने भोजन का ऐसा इन्तजाम रखा है कि अगर आप भोजन करें तो ठीक से

कपड़ा भी नहीं पहन सकते हैं और अगर ठीक से कपड़ा पहनना चाहें तो भर-पेट भोजन नहीं कर सकते। अगर भोजन और कपड़ा कर भी लिया तो फिर न बच्चों को पढ़ा सकते हैं और न बीमारी की हालत में दवा ही करा सकते हैं। ऐसा अच्छा भोजन का इन्तजाम आपको और कहीं भी नहीं मिल सकता। होटल का होटल और सत्यवादी तथा अहिंसक भी, कोई मजाक थोड़े है !"

समीर ने उस आदमी से कहा—"आपका होटल चाहे कितना भी सत्यवादी और अहिंसक हो, लेकिन हम लोग उस होटल में नहीं ठहर सकते। हम लोगों को किसी ऐसे होटल की जरूरत है जहाँ खाने-पीने के बाद हम लोगों के पास इतने पैसे बच सकें कि कहीं आने-जाने का भाड़ा निकल जाय, किसी किताब को खरीद सकने की सामर्थ्य हो।"

उस आदमी ने कहा—"किताब खरीदने की बात आप क्यों चलाते हैं ? हमारे होटल में ज्ञान तो यों ही दे दिया जाता है।"

"कैसा ज्ञान ?"

"भाषण देकर लोगों को उल्लू बनाने का ज्ञान हमारे होटल में हर तरह सीखना ही पड़ता है। अगर आप भाषण सुनिए तो फिर आपको मालूम होगा कि अवतार ही हो आया है। मगर उसके बाद इतना जरूर होता है कि किताब वगैरह पढ़ने की जरूरत नहीं रह पाती। हाँ, अगर आप चाहें तो लोटा-थाली बेचकर सिनेमा देख सकते हैं।"

समीर ने विरक्त होकर कहा—"नहीं, मुझे आपके होटल में नहीं जाना है। आप दूसरा मुसाफिर खोजिए।"

उसने कहा—"आपको तो मेरे होटल में आना ही पड़ेगा। वहाँ की इमारत इतनी मजबूत है कि उसकी एक ईंट भी नहीं खिसक सकती। उसमें जो ईंट जहाँ पर है वह वहीं रहेगी। इसके अलावा केवल चार आने में सत्यवादी और अहिंसक होने का सर्टिफिकेट। ऐसा आपको कहाँ मिल सकता है ?"

: ३ :

समीर ने एक दूसरे आदमी की ओर अपना मुँह घुमाया और बोला—"हाँ, अब आप अपने होटल की तारीफ करें।"

उन्होंने कहा—"मेरा होटल प्रजावादी समाजवादी किस्म का है। इस होटल को अच्छी तरह पनपने नहीं दिया जाता है। इस होटल में आराम बहुत है। सिर्फ वहाँ की नाली बदबू करती है। हम लोग चाहते हैं कि अब नाली को बन्द कर दिया जाय। नाली की राह उन्नति पाते ही लोग अहिंसक होटल में खिसक जाते हैं।"

समीर ने कहा—"अच्छी बात है। और कुछ ?"

उस आदमी ने कहा—"और तो मैं अहिंसक होटल की खूब शिकायत कर सकता हूँ। कहिए तो करूँ।"

"नहीं-नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं है," समीर ने कहा—"और आपका होटल साहब, आपके होटल की क्या बात है ? आपको तो देख रहा हूँ कि इस भयानक गरमी में भी मोटे कम्बल का कोट पहने हुए हैं। यह कैसी बात है ? गरमी में भी गरम कोट ?"

उस आदमी ने सिर झुकाकर कहा—"महोदय, गरमी तो केवल यहाँ है। मगर उस रूस की हालत देखिए। आजकल वहाँ इतनी ठण्ड पड़ा करती है कि डॉन और ओलगा का पानी जमकर बिलकुल बरफ़ बन गया होगा। रूस की सरदी आपसे क्या बतलाऊँ। वहाँ जाड़े के मारे ऐसा लगता है कि शरीर की नसों में बहने वाला सारा खून जमकर ठोस हो जायगा। इसीलिए मुझे गरम कोट पहनना बहुत जरूरी हो गया है। अगर न पहनूँ तो काम न चले।"

समीर ने कहा—"भाई साहब, जाड़ा तो रूस में पड़ता है और आप यहाँ गरम कोट पहनकर चलते हैं। यह फिलासफी मेरी समझ में नहीं आती।"

उस आदमी ने कहा—"फिलासफी तो मेरी समझ में भी नहीं आती, मगर हम लोगों का यह कर्तव्य है। अगर रूस में जाड़ा पड़े तो

यहाँ गरम कोट पहन लेना चाहिए ।"

समीर ने कहा—"भाईजान, आपका होटल भी मेरी समझ में नहीं आया।"

इतने में एक आदमी ने झपट्टा मारा और इन दोनों को बगल में दबोचकर ले चला। एक जगह उसने इन दोनों को जबर्दस्ती बिठा दिया और उन लोगों के सामने लेक्चर देना शुरू किया—"मेरे प्यारे भाइयो और बहनो, देश रोता है, धर्म कलपता है, संस्कृति साली नीचे चली जा रही है। क्यों ? मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्यों ? चाहे तो इस क्यों का जवाब दो या फिर मेरे होटल में चलो। वहाँ तुम्हें तरह-तरह का आराम दिया जायगा। इसके अलावा चाहे जब भी चाहो तुम उस होटल से निकलकर चले जा सकते हो। हम लोग बहुधा यही सोचते हैं कि हम लोगों का होटल इसीलिए है कि आदमी वहाँ से निकलकर चला जाय। हाँ, तो अगर देश का उत्थान करना है तो क्यों ? संस्कृतिमाता और सुरतीमाता की भलाई करनी है तो क्यों ? क्यों ? इस प्रश्न का जवाब दो। क्यों ?······क्यों ?······क्यों ?···"

यह कहता हुआ वह आदमी आगे बढ़ गया। इन लोगों की ओर उलटकर देखा भी नहीं कि ये आखिर आ भी रहे हैं या नहीं।

समीर ने कहा—"यहाँ तो बड़े बुरे फँस गए। इससे अच्छा तो वही हम लोगों का पुराना काल्पनिक नक्षत्र था।"

प्रभात ने हाथ जोड़कर समीर की ओर देखा और आँखों में आँसू भरकर कहने लगा—"समीर भाई, मेरे परम प्यारे भाई, तुम्हें बाप कसम है, मा कसम है, विद्या कसम है, अब इस जगह से चल दो। चलो, अपनी पुरानी बूढ़ी दुनिया में। वहीं रहेंगे। किसी तरह ज़िन्दगी बिताकर समाप्त कर देंगे, लेकिन किसी ऐसे नक्षत्र में नहीं रहेंगे जहाँ होटल का भी ठिकाना नहीं।"

प्रभात की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी और समीर उन आँसुओं को रूमाल से पोंछने लगा। उसकी आँखों में भी आँसू भर

आए थे।

सहसा एक पुलिस का आदमी सामने दिखलाई पड़ा। उसने कहा—"तुम यहाँ खड़े होकर रोते क्यों हो ? जरूर ही तुम दुख से रो रहे हो। मैं तुम्हें गिरफ्तार करना चाहता हूँ। रोकर तुम लोगों को किसी तरह भी नहीं बहका सकते।"

प्रभात ने रोते-रोते कहा—"नहीं भाई, मैं दुख से नहीं रोता। मेरे मन में इतना सुख भर गया है कि मैं सुख के मारे रो रहा हूँ।"

पुलिस वाले ने कहा—"मगर क्या तुम्हें मालूम है कि जो सुख के मारे रो सकते हैं वे टैक्स देकर रोया करते हैं। तुमने कितना टैक्स दिया है ?"

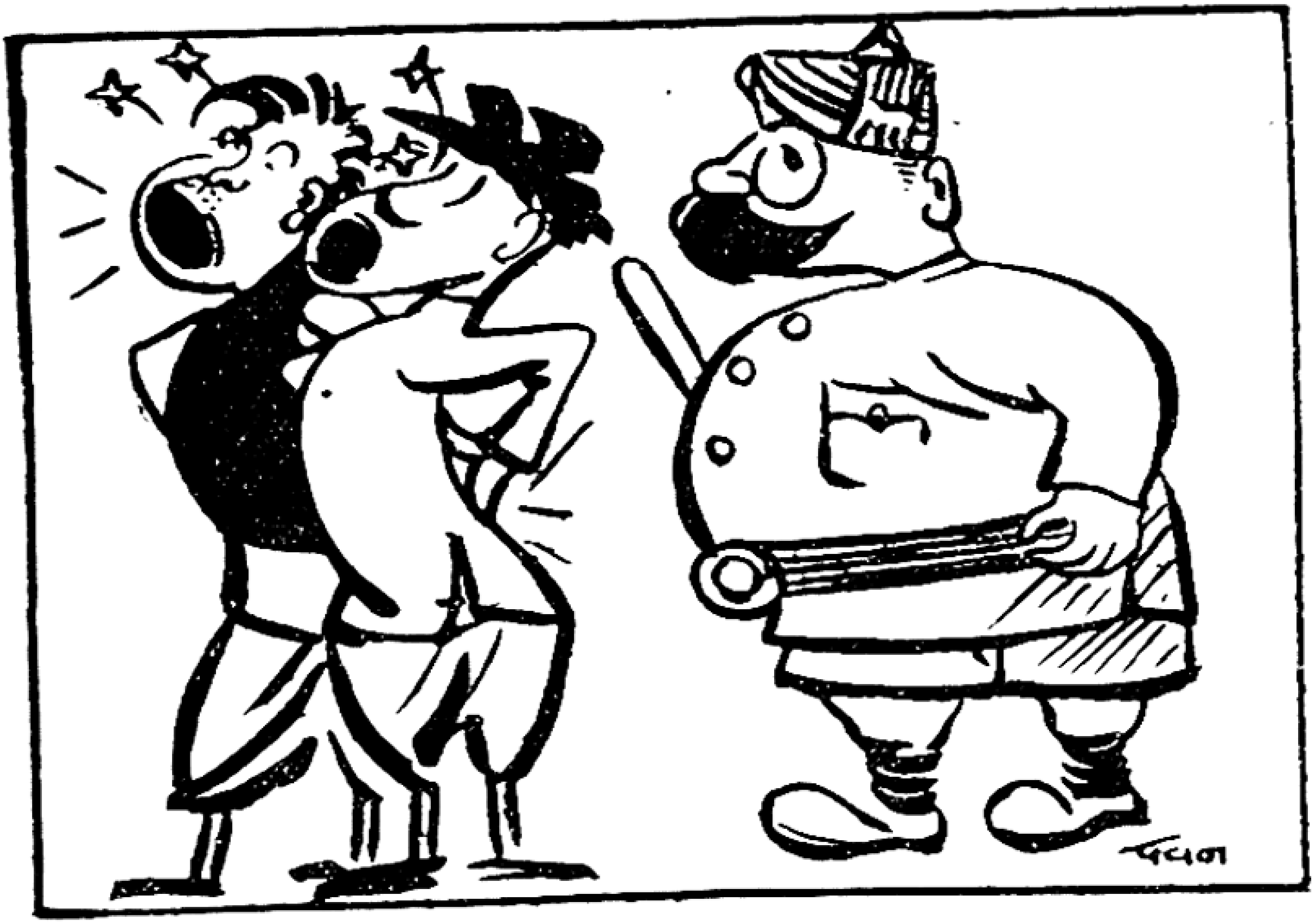
"या भगवान्, रोने पर भी टैक्स !" टैक्स के डर से प्रभात की रुलाई आप-से-आप बन्द हो गई। उसने हँसना चाहा, लेकिन हँसने में भी उसे भय मालूम हुआ कि कहीं हँसने पर भी टैक्स न लगता हो। उसने पूछा—"अच्छा पुलिस साहब, अगर आदमी हँसना चाहे तो उसे कितना टैक्स देना पड़ेगा ?"

पुलिस वाले ने अपनी मूँछ पर ताव देते हुए कहा—"ये बातें तो तुम्हें टैक्स-विभाग से मालूम होंगी। टैक्स का विभाग उस सड़क पर है। जी चाहे जा सकते हो।"

यह कहता हुआ वह पुलिस का आदमी वहाँ से चल पड़ा। चलते समय भी वह अपनी मूँछों पर ताव देता जा रहा था। फिर न जाने उसे कौनसी बात याद आ गई और वह लौट पड़ा। इन दोनों मित्रों के पास आकर उसने कड़ककर पूछा—"क्यों जी, तुम लोग तो यहाँ नये आदमी हो ? तुम लोग अहिंसा मानते हो या नहीं ?"

जिस ढंग से उसने सवाल किया था वह उन दोनों मित्रों को बड़ा बुरा मालूम हुआ। समीर ने झल्लाकर कहा—"नहीं, मैं अहिंसा नहीं मानता।"

इतना सुनना था कि उस पुलिस वाले की आँखें आप-से-आप लाल



हो आई। उसने मूँछों पर ताव देना छोड़ दिया और अपनी कमर से डण्डा निकाल लिया। उसके बाद उसने उस डण्डे को घुमाकर ऐसा भिन्नौटा डण्डा समीर और प्रभात की पीठ पर लगाया कि दोनों मित्र एकदम अकड़कर अपनी-अपनी पीठ टटोलने लगे। उसके बाद उसने फिर दुबारा अपना डण्डा घुमाना शुरू किया।

प्रभात ने पूछा—"अब आप फिर डण्डा क्यों घुमा रहे हैं?"

पुलिस ने कहा—"आप लोगों को मारना है या नहीं? सावधान हो जाओ। अबकी वह घमासान मार पड़ेगी कि दिमाग दुरुस्त हो जायगा।"

प्रभात ने कहा—"अब मारपीट की जरूरत नहीं। अब हम लोगों ने अहिंसा के मत को स्वीकार कर लिया।"

"अहिंसा को स्वीकार कर लिया?" पुलिस के उस आदमी ने हँसते हुए कहा—"वाह, तब आओ, हाथ मिला लो। मैं जानता था कि तुम

लोग अहिंसा को स्वीकार कर लोगे। मगर मेरा खयाल था कि जब तक आदमी की पीठ पर पाँच-सात घमासान नहीं होते तब तक वह जल्दी अहिंसा को स्वीकार नहीं किया करता।"

हाथ मिलाने के बाद उसने कहा—"तुम लोग समझदार आदमी मालूम होते हो। जल्दी ही अहिंसा को स्वीकार कर लिया। तुम लोगों से मैं प्रसन्न हूँ।"

इसके बाद वह उन दोनों आदमियों की पीठ थपथपाने लगा। जी-भर पीठ थपथपाकर वह वहाँ से चला गया।

उसके बाद फिर उस पुलिस वाले के जी में जाने क्या आया कि वह फिर लौट आया। अबकी ये दोनों मित्र फिर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे कि अब सिर पर क्या बला आती है। मगर उसने कुछ किया नहीं। एक बार उन लोगों को समझाकर कहा—"देखो भाई, अहिंसा बराबर मानते रहना। यों तुम्हारे जी में जो आवे वही करना, लेकिन अहिंसा को कभी अस्वीकार न करना।"

प्रभात ने सिर हिलाकर कहा—"जी हाँ, जी हाँ, अब भला कौन मूजी अहिंसा से इन्कार कर सकता है? अहिंसा का अभी-अभी हमें ऐसा पाठ मिल गया है जो जिन्दगी-भर याद रहेगा।"

पुलिस वाले ने कहा—"ठीक है।" और वह हँसता हुआ और अपनी मूँछों पर ताव देता हुआ वहाँ से चला गया।

प्रभात और समीर दोनों मित्रों का चेहरा उदास पड़ गया था। उन लोगों की पीठ पर जो अहिंसा की नीति समझाई गई थी उससे पीठ में भी दर्द मालूम हो रहा था। इसके अलावा पास में सामान भी कुछ था नहीं। वहाँ के होटल भी विचित्र प्रकार के थे। समझ में नहीं आता था कि कहाँ जायँ और क्या करें। प्रभात ने कहा—"यह तो बड़ा विचित्र स्थान है। यहाँ की अहिंसा का एटिकेट भी बहुत कठिन है। पहले ही हम लोगों से अहिंसक होटल में ठहरने के लिए कहा गया था, मगर न तुमने खयाल किया और न मैंने। अब चलो, उसी अहिं-

सक होटल की खोज करें। वहाँ किसी किस्म का खतरा नहीं मालूम होता।"

समीर ने मुरझाए हुए स्वर में कहा—"कहीं-न-कहीं कोई ठौर खोजना ही होगा।"

वे लोग वहाँ से चले और इधर-उधर अपने रहने के लिए स्थान खोजते हुए मारे-मारे फिरने लगे। उन लोगों ने लक्ष्य किया कि इस नक्षत्र पर रहने वाले लोगों का रंग तुरत-तुरत बदल जाता है। अभी जिसे नीला देखा वह तुरत पीला बन जाता था। पीला आदमी देखते-देखते भूरे रंग का हो जाता था। उन लोगों को इस बात से बहुत आश्चर्य मालूम हुआ, लेकिन किसी को रोककर इस विषय में पूछा नहीं कि कहीं अहिंसा के सिद्धान्त की तरह कोई दूसरा सिद्धान्त न समझा दिया जाय। सहसा उन लोगों ने देखा कि उस समय जो आदमी अहिंसक होटल की तारीफ कर रहा था वह आदमी सामने से जा रहा है। मगर उसका रंग इस समय बिलकुल बदला हुआ था। जब तक ध्यान से देखा न जाय तब तक यह कह सकना कठिन था कि यह वही आदमी है।

प्रभात ने उस आदमी को पुकारा। बोला—"भाई साहब, ज़रा इधर आ जाइए। आप तो वही आदमी हैं जो अहिंसक होटल की तारीफ कर रहे थे।"

उस आदमी ने कहा—"हाँ, उस समय तो मैं अहिंसक होटल की तारीफ जरूर कर रहा था, मगर अब आप देखते नहीं कि मेरा रंग बिलकुल बदल चुका है।"

प्रभात ने कहा—"हाँ, रंग तो आपका बदला हुआ नज़र आ रहा है। बात क्या हुई? आपका रंग किस तरह बदल गया?"

उस आदमी ने कहा—"भाई साहब, अब आपसे क्या बतलाऊँ। मैंने उस अहिंसक होटल को छोड़ दिया। वह बड़ा बुरा होटल है। उसके समान बुरा कोई होटल अभी तक हुआ ही नहीं। इतना बुरा

वह होटल है, आपसे उसकी बुराई का क्या बयान करूँ? वह इतना बुरा है कि कै हो आती है। इतना गन्दा होटल आपने संसार में कहीं नहीं देखा होगा। वहाँ के लोग अपने शरीर में गन्दगी लपेटकर रखते हैं कि कोई पास फटक न सके। इसी कारण मैंने उस होटल को छोड़ दिया।"

प्रभात और समीर दोनों उस आदमी की ओर हक्का-बक्का होकर देख रहे थे। उसने कहा—"बस, होटल है तो प्रजावादी-समाजवादी। वाह, क्या होटल है! ऐसा शिरुयेदार कड़वा खाना वहाँ मिलता है कि मिजाज़ ठण्डा हो जाता है! वह चकाचक सफाई वहाँ रहती है कि देखने वाले का जी चाहता है कि वह भी साफ हो जाय!"

समीर ने कहा—"आप तो प्रजावादी-समाजवादी होटल की तारीफ करने लगे।"

"सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है," उस आदमी ने कहा—"उस होटल में रहने की बड़ी सुविधा है। जब चाहिए रहिए, फिर जब जी चाहे वहाँ से निकल जाइए। किसी बात की फिक्र नहीं। बेपरवाह होकर रहिए और बेफिक्र होकर वहाँ से निकल जाइए। कोई धर-पकड़ नहीं। दूसरी बात है कि वहाँ रहकर अगर आप अहिंसक होटल की शिकायत करें तो पुलिस आपको कुछ नहीं कर सकती।"

वह आदमी इतना ही कह पाया था कि एक दूसरा आदमी वहाँ आ गया। यद्यपि उस आदमी का रंग बदल गया था फिर भी प्रभात ने पहचान लिया कि यह वही आदमी है जो उस समय प्रजावादी-समाजवादी होटल की तारीफ कर रहा था। उस आदमी ने आते ही पहले वाले को घसोड़कर परे हटा दिया और कहने लगा—"महोदय, आप लोग इस आदमी के कहे पर न जाइए। यह आदमी अहिंसक होटल की शिकायत करेगा ही। इसे वहाँ से निकाल दिया गया है।"

"निकाल दिया गया?" समीर ने आश्चर्य से पूछा—"क्यों

निकाल दिया गया ?"

उस दूसरे आदमी ने कहा—"इसने सिद्धान्त का सिरका खराब कर दिया था। इसीलिए इसे वहाँ से अनुशासनपूर्वक निकाल दिया गया।"

वह आदमी चिल्ला उठा—"नहीं नहीं, सिद्धान्त का सिरका मैंने नहीं फोड़ा है। सिद्धान्त का सिरका खराब भी कैसे हो सकता है ? वहाँ तो कोई सिद्धान्त ही नहीं। मैंने तो वहाँ की गन्दगी साफ करनी चाही थी। इसी कारण यारों ने मुझे वहाँ से निकाल दिया। क्या करूँ, उधर के लोग गन्दगी बहुत पसन्द करते हैं। लेकिन प्रजावादी-समाजवादी होटल में तनिक गन्दगी नहीं। वहाँ तो वह चकाचक सफाई है कि मैं आप लोगों से क्या बतलाऊँ !"

इतने में झपटता हुआ एक आदमी वहाँ गरम ओवरकोट पहने हुए पहुँच गया। उस आदमी का रंग बदला हुआ नज़र नहीं आता था। वह वही आदमी था जो रूस में अधिक जाड़ा पड़ने के कारण वहाँ की गरमी में भी गरम कोट पहना करता था। उसने आते-आते कहा—"सफाई देखनी हो तो रूस को देखिए। वहाँ ऐसी सफाई है कि कितने ही आदमी साफ कर दिये गए। यों सफाई-सफाई बकने से तो सफाई नहीं हो जाती। सफाई करते समय सब कुछ को साफ कर दिया जाता है। आप लोग हमारे रूसी डिज़ाइन के होटल में तशरीफ ले आवें।"

प्रभात ने कहा—"भाई साहब, मुझे तो माफ करें। मैं अब अहिंसक होटल में जाना चाहता हूँ।"

प्रजावादी-समाजवादी होटल का आदमी बिगड़ खड़ा हुआ। उसने कहा—"भाई साहब, उस होटल की गन्दगी को जानकर भी आप वहीं जाना चाहते हैं। देखिए, मैंने गन्दगी के कारण उस होटल का परित्याग कर दिया। फिर भी आप वहाँ जाने में लज्जा नहीं करते ?"

प्रभात ने कहा—"अहिंसक होटल जाने में अब मुझे कोई लाज

नहीं। अब हम लोगों ने अहिंसा का सिद्धान्त मान लिया है।"

"अहिंसा मान लिया ? किस तरह ?"

प्रभात ने कहा—"अभी थोड़ी देर पहले एक पुलिस वाले ने हम दोनों आदमियों को अच्छी तरह अहिंसा का सिद्धान्त बतला दिया है।"

इस बात को सुनते ही वे लोग आपस में कहने लगे कि अब पुलिस का जुल्म बहुत बढ़ गया है। अब पुलिस अहिंसा का सिद्धान्त भी बतलाने लगी है। पुलिस को ऐसा नहीं करना चाहिए। वह चोरी-पाकेटमारी बतला सकती है, बेईमानी करने का सिद्धान्त भी सिखला सकती है, लेकिन अहिंसा का सिद्धान्त बतलाने का पुलिस को कोई अधिकार नहीं। अहिंसा राजनीति है। राजनीति के बारे में पुलिस को सिद्धान्त समझाने का कोई अधिकार नहीं।

वे लोग इसी तरह की बातचीत में उलझ गए थे कि इसी बीच उस अहिंसक होटल वाले के साथ ये दोनों मित्र रवाना हो गए।

उन लोगों को लेकर वह एक बहुत बड़ी इमारत में पहुँचा। उस समय उस होटल में प्रार्थना हो रही थी। लोग बड़े भक्तिभाव से भजन गा रहे थे :

*ओम् है तू, आमीन है तू !*
*जिसकी समझ में जैसा आया, वैसा ही है तू।*
*जिसने जैसा माना, उतना ही है तू।*
*तेरा है यह भू, वैसा ही है तू !*

## : ४ :

मालूम होता है कि वे महोदय भी उसी होटल में रहते थे। उन्होंने जैसे ही उन दोनों मित्रों को देखा कि उनकी भवें नाचने लगीं, हाथ और पैर चमकने लगे और वे विचित्र प्रकार से प्री-प्री करने लगे। इसके बाद उन लोगों से पूछा—"आप लोग कौन साहब हैं ?"

प्रभात ने कहा—"हम लोग मनुष्य साहब हैं। कहिए, आपको

क्या कहना है ?''

उन्होंने फिर प्री-प्री की आवाज की। उसी तरह प्री-प्री करते हुए जब उनकी आवाज में तेजी आई, तो कड़ककर बोले—''तुम इस अहिसक होटल में कैसे आ गए ?''

प्रभात ने बेफिक्री से कहा—''आ गया।''

''वाह, आ गया !'' उन्होंने आश्चर्य से कहा और फिर प्री-प्री करने लगे। उसके बाद बोले—''नियम ४२० के अनुसार आपका इस होटल में आना एकदम अवैधानिक है। इस होटल में आजकल वही आ सकता है जो ठीक-ठीक नियम ४२० के अनुसार आ जाय।''

समीर ने झिझकते-शरमाते हुए कहा—''क्या करूँ, मुझे मालूम नहीं था। मुझे बतलाया गया कि यह होटल अच्छा है।''

समीर को दुबकते हुए देखकर उन्होंने जोर से प्री-प्री किया और घुड़ककर कहा—''तुम लोगों ने यहाँ आकर भारी भूल की। मुझे यहाँ का ऐसा वैधानिक ज्ञान है कि मैं तुम लोगों का सामान उठाकर बाहर फेंक दूँगा।''

प्रभात ने बेफिक्र होकर कहा—''आप मजे में हम लोगों का सामान उठाकर बाहर फेंक दें। हम लोगों के पास कोई सामान ही नहीं है।''

इस बात को सुनकर वह आदमी बड़ी देर तक प्री-प्री करता रहा। उसके बाद सँभलकर ऊँची आवाज़ में बोला—''जब तुम लोगों के पास सामान ही नहीं है तब मैं तुम लोगों को उठाकर बाहर फेंक दूँगा।''

समीर ने उसे पुचकारते हुए कहा—''भाई साहब, आप ऐसा क्यों करेंगे ?''

उसने प्री-प्री करके कहा—''हम लोग इस होटल के पुराने अखाड़िया हैं। तुम लोग जब यहाँ नये-नये आए हो तो ज़रूर नई-नई बातें करोगे। ऐसा मैं नहीं चाहता। मैं चाहूँगा कि नया आदमी इस होटल में नहीं घुस पावे। पुराना पापी हो तो कोई बात नहीं, मगर नये आदमी

को हम लोग इस होटल में देखना भी पसन्द नहीं करते।"

प्रभात ने भी तब पैंतरे बदले। डपटकर बोला—"ऐसा क्यों? किस अधिकार से?"

प्री-प्री करके उस आदमी ने भी प्रभात को घुड़की लगाई। झाड़कर बोला—"तुम नियम ४२० जानते हो?"

प्रभात ने बड़े गर्व के साथ कहा—"तुम तो केवल नियम ४२० तक जानते हो। मैं ४,०४,४२० नियम भी जानता हूँ।"

यह सुनते ही वह आदमी ठण्डा पड़ गया। साँप का डसने वाला फण जिस प्रकार आतंक से सिकुड़दम हो जाता है वे उसी तरह सिकुड़ गए। बोले—"मुझे मालूम नहीं था कि आप लोग चार लाख, चार हजार, चार सौ बीस नियम तक जानते हैं। मैं आप लोगों से कोई झगड़ा नहीं करता। मैं तो कुछ बोलता भी नहीं। आपका जी चाहे इस होटल में पड़े रह जाइए। मैं आप लोगों से कुछ भी नहीं बोलूँगा। इसमें तो मेरा भी लाभ है। आप लोग बहुत नियम जानते हैं। कोई हरज नहीं। आप लोग इस होटल में पड़े रहें। मैं आप लोगों से अपने दल का लाभ उठाऊँगा।"

प्रभात ने उस आदमी की पीठ ठोक दी। बोला—"कुछ परवा नहीं बच्चे, मैं बहुत ज्यादा नियम जानता हूँ। अपने सभी नियमों से मैं तुम्हारे दल को ही फायदा पहुँचाऊँगा।"

उसके बाद से वे दोनों मित्र चुपचाप उस होटल के अन्दर ही पड़े रहे। वहाँ से कभी बाहर निकलते तक नहीं थे। बाहर निकलने में उन्हें भय मालूम होता था कि कहीं किसी नियम के अनुसार उन्हें फिर भीतर जाने से रोक न दिया जाय। इस भय से वे अपने कमरे के अन्दर ही रहा करते। वहीं चाय पीते, जलपान करते, भोजन करते और वहीं सो जाते। कमरे से बाहर अगर गाली-गुफ्ता, हल्ला-गुल्ला भी होता तो वे खिड़की खोलकर झाँकने में भी डर जाया करते। कभी-कभी जब वे लोग उस होटल के आदमियों से मिलते तो बातचीत से मालूम होता कि इस

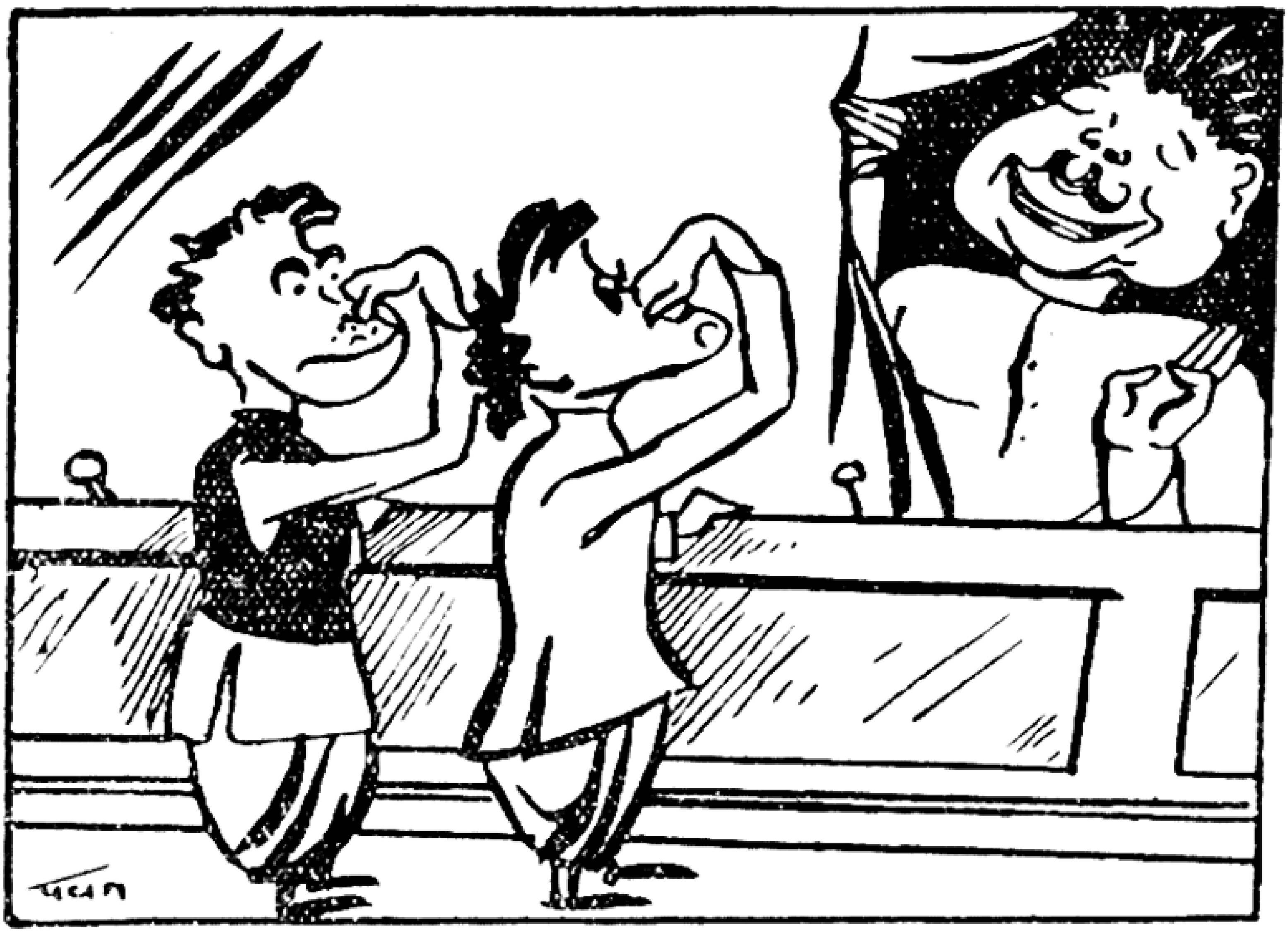
होटल में हर आदमी कुछ होना चाहता है; मगर वह क्या होना चाहता है यही उसे मालूम नहीं। इसके सिवा उन लोगों ने देखा कि उस होटल में रहने वालों के सामने काम बहुत हैं, लेकिन काम करने की ओर किसी का ध्यान ही नहीं। कुछ अशान्ति होती तो शान्ति-मन्त्र का पाठ करके "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" कह दिया जाता था और उसीसे कुछ शान्ति आ जाती थी। उसके बाद वे इस बात की फिक्र ही नहीं करते थे कि अशान्ति किसलिए होती है, इसका कारण क्या है, उसका मूलोच्छेद कैसे किया जाय।"

एक दिन दोनों मित्रों की तबीयत ऊब गई तो वे बाहर घूमने के लिए निकले। उस देश का बाजार अजीब था। मालूम होता था कि संसार की तमाम दुर्गन्धि यहीं आकर व्याप्त हो गई है। अजीब तरह की वहाँ की दुकानें थीं। दुकानों के ऊपर परदा पड़ा हुआ था और उसके भीतर से नाक छेद देने वाली बदबू निकल रही थी। आखिर यह भी देख लेना चाहिए, उन लोगों ने सोचा और एक दुकान में घुस गए। एक आदमी इन लोगों के स्वागत के लिए उठ आया और विचित्र प्रकार से नमस्कार करता हुआ कहने लगा—"वाहवा, आप लोग आ गए। मैं जानता था कि आप लोग आवेंगे ही, जरूर आवेंगे। मेरे पास एक-से-एक सड़ा हुआ माल है। इससे आप जितना भी लाभ उठाना चाहें उठा सकते हैं।"

प्रभात ने अपनी नाक बन्द करते हुए कहा—"मालूम होता है कि आपके पास बहुत ही सड़ा हुआ माल है।"

"जी, बहुत ही काफी सड़ा हुआ!" उसने खुशामद के स्वर में कहा—"आप तो जानते ही हैं कि हम लोगों से ज्यादा सड़ा हुआ माल आपको और कहीं नहीं मिल सकता। आखिर हम लोगों की कम्पनी लिमिटेड है या नहीं? माल को कोई भी हम लोगों से ज्यादा सड़ा ही नहीं सकता।"

प्रभात ने कहा—"माल तो आपका काफी सड़ा हुआ मालूम होता




हैं। मेरी नाक फटी जा रही है। मालूम होता है कि जीते-जी नरक में आ गया हूँ।"

वह आदमी बड़े गौरव के साथ हँसने लगा। हँसता हुआ बोला—"जी हाँ, यही तो हम लोगों की विशेषता है।"

"मगर आप किस माल का रोजगार करते हैं?"

उसने सिर हिलाकर कहा—"आप लोगों को मालूम नहीं? हमारा फर्म बहुत बड़ा है। हम लोग पिछड़े हुए वर्ग के दिमाग को सड़ाते हैं। पिछड़े वर्ग के दिमाग को हम लोग खूब गन्दा करते हैं, खूब गन्दा करते हैं। जब वह गन्दा होकर बिलकुल सड़ जाता है तब उसे हम लोग बिक्री किया करते हैं।"

"उसका दाम आप लोग क्या लेते हैं?"

"जो भी अच्छा दाम मिल जाय। उदाहरण के लिए मैं आपको बतलाता हूँ कि मैं नकदी सौदा करता हूँ और वादे पर भी माल सप्लाई

किया करता हूँ। नकदी रुपया मिल जाय तो वह भी ठीक; न हुआ उच्च पद की आशा-अभिलाषा में भी मैं अपना माल बेच देता हूँ। बोलिए, आप किस तरह का सौदा करना चाहते हैं ? नकदी माँगिए तो नकदी दे दूँ। ख्याति या पद के वादा पर कहें तो उस भाव पर भी अपना माल आपको दे दूँगा। जैसी आपकी रुचि हो।''

समीर ने पूछा—"क्यों भाई, आप लोग सड़ा बदबूदार माल क्यों बेचते हैं ? माल को खुशबूदार तरोताज़ा बनाकर क्यों नहीं बेचा करते ?''

समीर की बात सुनकर वह आदमी एकदम उछलने लगा। दो-तीन बार उछलकर उसने कहा—"वाह साहब, आप लोग तो अच्छी बात कहने लगे ? दिमाग को सड़ाकर और बदबूदार बनाकर न बेचूँ तो क्या खुशबूदार बनाकर बेचूँ ? ऐसा मुझसे नहीं हो सकता। ऐसा माल बेचने में मेरा फायदा ही क्या ? माल जितना सड़ा हुआ होगा और उससे जितनी अधिक बदबू आवेगी उतनी ही मेरी कद्र होगी और उससे उतना ही लाभ होगा। आपको माल लेना हो तो लें, वरना अपना रास्ता पकड़ें।''

प्रभात ने चिढ़कर कहा—"कोई भी भला आदमी आपसे माल खरीदना पसन्द नहीं करेगा।''

उस आदमी ने कहा—"अजी चलिए यहाँ से ! बड़े-बड़े लोग आते हैं और अपनी नाक रगड़ते हैं। मैं क्या कोई मामूली माल बेचता हूँ। लिमिटेड कम्पनी के रूप में काम होता है। दिल्लगी वाली बात नहीं है। हम लोग लिमिटेड रूप से पिछड़े वर्ग का दिमाग सड़ाया करते हैं।''

: ५ :

एक दूसरी दुकान में घुसकर प्रभात ने पूछा—"कहिए साहब, आप लोगों के पास सबसे सड़ा हुआ माल कौनसा है ?''

उस आदमी ने उन दोनों का स्वागत करते हुए कहा—"हम लोग सड़ा माल नहीं बेचते। हम लोग गरम माल बेचा करते हैं। एकदम गरमागरम माल। हाथ में लीजिए तो हाथ जल जाय, मुँह में लीजिए तो मुँह झुलस जाय। माल को गर्म करने में हम लोग पक्के हैं।"

"क्या गरम माल है आपके पास?" प्रभात ने पूछा।

समीर ने उसी सवाल को सुधारते हुए कहा—"आप लोग कौनसा माल गरम करते हैं?"

उसने कहा—"हम लोग जनता की खोपड़ी गरम करते हैं। जनता की खोपड़ी को गरम करके हम लोग उस माल को बेचा करते हैं। इससे हम लोगों को अच्छा फायदा है।"

समीर ने पूछा—"इसमें आपको अच्छा फायदा है; लेकिन इससे मेरा क्या फायदा है?"

"वाह! आपका फायदा क्यों नहीं?" उस आदमी ने कहा—"यही तो हम लोगों की विशेषता है। जनता की खोपड़ी को हम लोग हर तरह गरम कर सकते हैं। आप कहें तो हम उसे अहिंसक तरीके से गरम कर दें। या आपकी इच्छा हो तो मैं हिंसक पद्धति से जनता की खोपड़ी गरम करूँ। जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा ही गरम माल आपको दिया जायगा।"

प्रभात ने कहा—"आप लोग जनता की खोपड़ी को फिजूल गरम क्यों करते हैं? उसे ठण्डा और साफ क्यों नहीं किया करते?"

उस आदमी ने तड़पकर कहा—"अरे मियाँ, ऐसा करके क्या मैं भूखों मरूँ? फिर मेरा रोजगार कैसे चलेगा?"

विचित्र वहाँ का बाजार था, विचित्र चीज़ें वहाँ बिकती थीं। एक दुकान में गये तो पाया कि वहाँ हाजमा की गोलियाँ बिक रही थीं। तरह-तरह की हाजमे की गोलियाँ थीं। एक गोली के बारे में बतलाया गया कि इससे चन्दा अच्छी तरह हजम हो जाता है। दूसरी तरह की गोली के बारे में बतलाया गया कि इसके खाने से यात्रा का भत्ता हजम

हो जाता है। एक तरह की गोली को सामने रखते हुए दुकानदार ने बतलाया कि इस गोली से इन्कम-टैक्स, सुपर-टैक्स, सेल-टैक्स आदि हजम हो जाते हैं। एक और तरह की गोली को दिखलाते हुए उसने कहा कि इस गोली की तारीफ मैं आपसे क्या बतलाऊँ। इसे खुद हकीम लुकमान ने बनाया था। इसे खाते ही आदमी की इन्सानियत भी हजम हो जाती है। आजकल इसकी बड़ी माँग है। सभी इसे ही खोजते हुए आया करते हैं। दाम भी किफायत। नतीजा है कि यह गोली अमीर-गरीब सबमें प्रचलित है। जो चाहे आप भी इसे आजमाकर देख लें। अगर फायदा न हो तो दाम वापस!"



वे लोग आगे बढ़े तो एक महिला ने परदे की ओट से उन लोगों को बुलाया। वहाँ पहुँचने पर उन लोगों ने एक स्थूलकाय रमणी को देखा जो उन लोगों की ओर देखती हुई मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। उसने मुस्कराते हुए कहा—"आप लोग तो यों मुँह मोड़कर चले

जाते थे मानो कुछ जानते ही नहीं। इस दुकान में जो लाजवाब चीज़ मिला करती है उसका पता आपको मालूम है ?"

प्रभात तुरत हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—"देवीजी, मैं विद्या की कसम खाकर कहता हूँ कि इस दुकान के विषय में मुझे कुछ भी पता नहीं।"

समीर ने उत्सुकता से पूछा—"आप लोग क्या चीज बेचती हैं ?"

उस महिला ने मुस्कराकर कहा—"मैं स्त्रियों के अधिकार को बेचती हूँ। दाम तो कुछ मँहगा-सा जरूर है, लेकिन आज के बाजार में हम लोगों से सौदा किये बिना काम नहीं चल सकता। आखिर हम लोग स्त्रियों का अधिकार बेचा करती हैं।"

"यह कैसे ? स्त्रियों का अधिकार लेने से मेरा क्या लाभ है ?"

"वाह, लाभ कैसे नहीं है ?" वह स्थूलकाय रमणी झूम-झूमकर कहने लगी—"जब मैं आपके हाथ उनका अधिकार बेच दूँगी तब उनका सारा अधिकार ही आपका हो जायगा।"

"कैसे ?" समीर ने आश्चर्य से प्रश्न किया। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि ये देवीजी किस तरह के अधिकारों की बात कर रही हैं।

देवीजी ने कहा—"मान लीजिए कि आपने कहा कि स्त्रियों को गृहलक्ष्मी होना चाहिए। बस, मैं उनका सारा अधिकार आपके हाथ बेच दूँगी। इससे क्या होगा कि वे जब भी कभी अपना अधिकार माँगेंगी तो केवल गृहलक्ष्मी होने का अधिकार माँगेंगी। दूसरा कोई भी अधिकार वे नहीं माँग सकतीं।"

"आप कैसी बातें करती हैं ?" समीर ने पूछा—"यदि मैं कहूँ कि स्त्रियाँ समाज में तितलियों की तरह फुदकती रहें, तो क्या उनका वही अधिकार हो जायगा ?"

"जरूर ! उनका वही अधिकार हो जायगा !" देवीजी बड़ी गम्भीरता के साथ अपना सिर हिलाने लगीं।

"अगर मैं कहूँ कि स्त्रियों का अधिकार केवल इतना ही है कि वे रोटी सेंककर खुद भी नहीं खाया करें ?"

"निश्चय तब उनका वही अधिकार हो जायगा। वे अपने इसी अधिकार को लेने के लिए आन्दोलन करेंगी और इसी अधिकार के लिए ठुमरी गाती हुई जलूस निकालकर गली-गली घूमती रहेंगी।" देवीजी अभी तक अपना सिर उसी गम्भीरता के साथ हिला रही थीं।

समीर ने कहा—"तब मैं जरूर ही आपसे स्त्रियों का अधिकार खरीदूँगा। उसका दाम आप क्या लेंगी ?"

"इसका दाम ? इसका दाम केवल इतना हो होगा कि आप मुझे स्वास्थ्य मन्त्रिणी बना दें।"

"स्वास्थ्य मन्त्रिणी ? स्वास्थ्य मन्त्रिणी होकर आप क्या करेंगी ?" समीर ने कहा, "आपका स्वास्थ तो स्वयं खराब मालूम होता है। आपको अर्थ-मन्त्रिणी होना चाहिए। जहाँ किसी ने कहा कि अर्थ, तो आप तुरन्त कह उठें कि अनर्थ ! बस, न अर्थ होगा और न अनर्थ होगा, सारा देश समर्थ हो जायगा।"

मगर देवीजी ने अपना सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं-नहीं, मैं तो स्वास्थ्य मन्त्रिणी ही बनूँगी। न उससे ज्यादा बनूँगी और न कम बनूँगी। पसन्द हो तो मान लो, वरना अपना रास्ता पकड़ो।"

देवीजी का सिर तब भी तीन कोण के कुम्हड़े की तरह हिल रहा था।

प्रभात ने कहा—"हमारी पृथ्वी पर कुछ इस तरह की स्त्रियाँ होती हैं जो अपनी लाज बेचा करती हैं। हम लोग उन्हें वेश्या कहा करते हैं। मगर आप तो ऐसी हैं कि समस्त स्त्रियों के अधिकार को ही बेच डालती हैं। आप जैसी महिलाओं को इस देश में क्या कहा जाता है ?"

देवीजी का हिलता हुआ सिर एकाएक स्थिर हो गया और उनकी आँखों में लाली छा गई। वे प्रभात की ओर इस तरह देखने लगीं कि मानो उसे कच्चा चबा जायँगी और नमक-मिर्च तक नहीं माँगेंगी।

प्रभात ने कहा—"केवल अपनी महत्ता के लिए समस्त स्त्रियों को गुमराह बनाना या उनके अधिकारों से खिलवाड़ करना किसी तरह भी उचित नहीं। आपको धिक्!....धिक्!!....धिक्!!!"

प्रभात की बात सुनकर देवीजी बिलकुल हक्की-बक्की हो गईं। पहले तो उनके मुँह से बोल भी नहीं फूटा। फिर सँभलकर बोलीं—"साला कहीं का। क्या बोलता है? निरंजना देवी, निकाल तो लुकाठी। इस मुए का मुँह झोल डालूँ।"

मगर लुकाठी निकलने से पहले ही वे लोग वहाँ से चल चुके थे।

: ६ :

रात के समय वे दोनों अपने बैलून के पास गए। उसकी घुण्डी दबाई। वह बैलून आकाश में लटकता हुआ उड़ चला।

प्रभात उमंग से भरा हुआ उस समय सिनेमा का गीत गा रहा था। समीर अपने गाल पर हाथ रखकर बैठा हुआ सोच रहा था कि इसी तरह इधर-उधर घूमते हुए हम लोग न जाने कहाँ पहुँच जायँगे। कभी भी अपनी पृथ्वी पर पहुँच सकेंगे या नहीं?

# छः

: १ :

जब उन लोगों का बैलून एक नक्षत्र पर जाकर उतरा तो उसके भीतर से वे दोनों मित्र इस तरह निकलकर चले मानो सैर करने जा रहे हों। दोनों में किसी के चेहरे पर न परेशानी थी और न थकावट। वे लोग इस तरह चले जा रहे थे मानो इस ग्रह से उस नक्षत्र पर जाना उन लोगों का पेशा ही हो गया है। मानो कोई नई बात नहीं, मानो किसी सिनेमा के स्टूडियो को देखने जा रहे हों।

वहाँ की सड़कें विचित्र प्रकार की आड़ी-तिरछी ऐसी थीं कि लगता था जैसे इन सड़कों के द्वारा रेखागणित का साध्य सिद्ध किया गया हो। वे लोग कुछ ही दूर गये होंगे कि सररर वह सड़क ही चलने लगी। समीर तो गिरते-गिरते बचा। प्रभात ने सँभलकर कहा—"वाह, यह अच्छा है। राही को चलने की जरूरत नहीं। सड़क ही चला करे। भई, यह खूब रहा!"

समीर ने कहा—"मालूम होता है कि इस नक्षत्र के लोग विज्ञान में बहुत उन्नत हो चुके हैं।"

और वह सड़क सनासन चलती जा रही थी।

समीर ने पूछा—"यह सड़क कहीं रुकेगी भी या हम लोगों को ढोती ही जायगी?"



प्रभात ने कहा—"जहाँ तुम हो वहीं मैं भी हूँ। यहाँ के बारे में जितना तुम जानते हो उतना ही मैं जानता हूँ।"

समीर ने कहा—"मैं सोच रहा हूँ कि अगर तुम मुझसे कुछ अधिक जानते तो अच्छा था।"

सहसा उस सड़क की गति धीमी हुई और फिर धीमी होते-होते रुक गई। एक अजीब तरह का बँगला था। दोनों उतरकर वहीं पहुँचे। दरवाज़े बन्द थे, लेकिन जब प्रभात ने धक्का दिया तो दरवाज़ा खुल गया। पहले तो दोनों में किसी की हिम्मत नहीं हुई कि भीतर जाय, लेकिन प्रभात ने कहा—"चलो, भीतर ही चला जाय। वहाँ बैठने की सुविधा तो मिल जायगी।"

समीर ने कहा—"देख भी लूँगा कि यहाँ के लोग कैसे हैं, यह बँगला किस आदमी का है। किसी से मुलाकात भी हो जायगी।"

लेकिन फिर भी दोनों आदमी बाहर ही खड़े रह गए। दोनों में

किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि भीतर जाय।

प्रभात ने कहा—"देखो भाई, मैं भीतर जाता हूँ। अगर मेरे आने में विलम्ब मालूम हो तो बाहर से तुम हल्ला करना। यहाँ तो अलिफ-लैला से भी ज्यादा तिलिस्म मालूम होता है।"

समीर ने कहा—"अच्छी बात है, तुम अन्दर जाओ। मैं बाहर से हल्ला मचाना शुरू करूँगा।"

प्रभात ने भीतर जाकर देखा कि वहाँ पढ़ाई हो रही है। लड़कियाँ बैठी हैं और सामने सिनेमा का-सा परदा पड़ा हुआ है। उसी परदे पर अध्यापक दिखाई दे रहा है और वह लड़कियों को पढ़ा रहा है। प्रभात ने समझ लिया कि यह टेलिविजन की पढ़ाई है। अधिक अध्यापक क्यों रखे जायँ, केवल एक ही अध्यापक सारे लड़के-लड़कियों को पढ़ा लेता है। वहाँ जो लड़कियाँ थीं उनका मुँह चौकोर था। वे प्रभात को देख-देखकर पेन्सिल चबा रही थीं और मुस्करा रही थीं। प्रभात ने चिढ़कर कहा—"तुम लोग पेन्सिल क्यों चबाया करती हो? घर में खाने को नहीं मिलता है क्या?"

सहसा परदे पर से अध्यापक ने घुड़ककर कहा—"अबे, पढ़ाने में विघ्न क्यों डालता है? चुप खड़ा रह!"

प्रभात सहमकर चुप खड़ा हो गया। मालूम होता था कि जैसे वह ड्रिल करने के लिए तैयार हो।

इसी समय बाहर से भयानक शोर की आवाज सुनाई पड़ी। प्रभात ने समझ लिया कि बाहर समीर हल्ला मचा रहा है। उसने चिढ़कर जोर से कहा—"आता हूँ यार, शोर क्यों मचाते हो?"

मगर फिर भी समीर का हल्ला कम नहीं पड़ता था। वह उत्तरोत्तर जोर-जोर से चिल्लाने लगा था। पढ़ाने वाले अध्यापक ने कहा—"न जाने कहाँ से कम्बख्त क्लास में घुस आए हैं। आज की पढ़ाई यहीं बन्द की जाती है।

और बस, पर्दे पर काला-सा परदा पड़ गया। पढ़ाई बन्द हो गई।

लड़कियाँ उठीं और प्रभात की ओर देख-देखकर मुँह बिचकाती हुई जाने लगीं। इधर बाहर समीर ने जब किसी लड़की को बाहर निकलते हुए देखा तो सिर खुजलाते हुए सोचने लगा कि कहीं प्रभात ही अन्दर जाकर स्त्री के रूप में परिवर्तित न हो गया हो। वह उससे कुछ पूछने वाला ही था कि दूसरी लड़कियाँ भी बाहर निकलने लगीं और समीर ने मामला समझ लिया। लड़कियों की भीड़ के कारण प्रभात भीतर ही रुका हुआ रह गया। इसी समय बाहर साँ साँ की आवाज करती हुई एक अजीब तरह की मोटर आकर खड़ी हुई। उसके भीतर से पुलिस के लोग निकले। समीर के पास जाकर कहा—"तुम लोग बिना किसी कारण के लड़कियों के स्कूल में घुस क्यों पड़े? मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करता हूँ।"

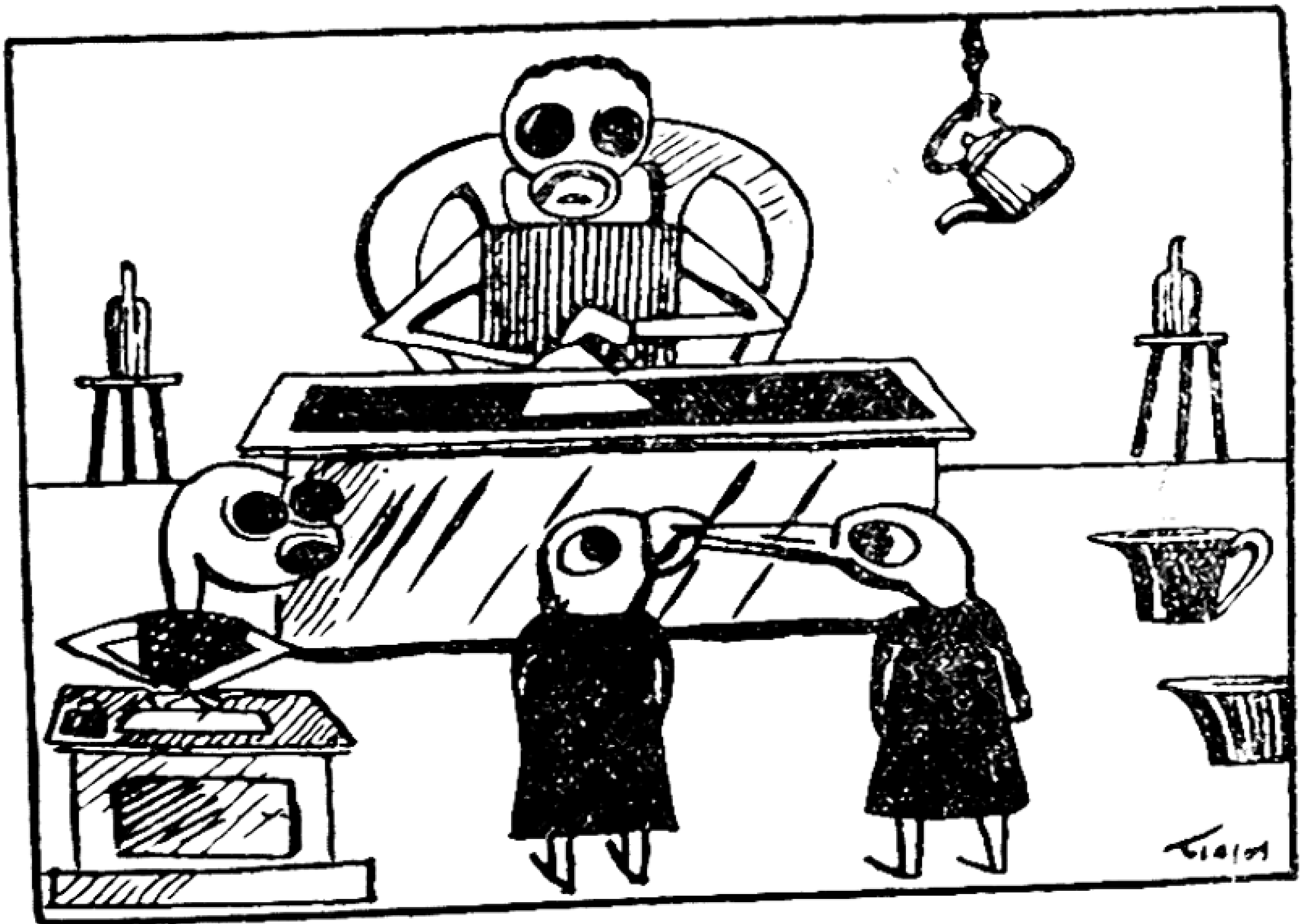
प्रभात भी इसी समय निकला और वह भी गिरफ्तार कर लिया गया। जाते समय प्रभात ने बड़े ज़ोर से नारा लगाया—"बोलो, हम लोगों की जय!"

लेकिन किसी ने भी इस नारे का साथ नहीं दिया। दोनों मित्र मोटर पर लाद दिये गए।

: २ :

यदि समीर और प्रभात से यह नहीं कहा गया होता कि यह अदालत है, तो वे कदापि इस पर विश्वास नहीं कर सकते थे। चारों ओर तरह-तरह की बोतलें और किस्म-किस्म के प्लास्टिक के बरतन, तमाम अदालत में ये चीजें ही भरी हुई थीं। ऊपर की एक कुरसी पर हाकिम बैठे हुए थे और नीचे की कुरसी पर पेशकार। सामने दो वकील खड़े होकर आपस में चोंच लड़ा रहे थे। एक वकील का मुँह काकातूआ की तरह था और दूसरे वकील की चोंच बगुले की तरह लम्बी थी। दोनों बहस करते जाते थे और बीच-बीच में अपनी चोंच भी लड़ा लेते थे।

काकातूआ की तरह का वकील जो-कुछ कह रहा था उसका आशय



यह है—मुकदमा शुरू होने से पहले ही हम लोगों को बहस करके समाप्त कर देना चाहिए। आखिर मुकदमे में कुछ रखा हुआ तो है नहीं। यह अच्छी तरह मालूम है कि वादी-प्रतिवादी अपनी तबीयत से बातें करेंगे और हाकिम भी अपनी तबीयत से फैसला देंगे। इसलिए वकीलों को भी उचित है कि अपनी तबीयत से, जो मन में आवे, बहस कर देना चाहिए। माननीय जज साहब, इन दोनों आदमियों ने बड़ा भारी कुसूर किया है। इन लोगों के द्वारा बड़ी भयानक बात हो गई है जैसा कि इस देश के इतिहास में कभी नहीं हुआ था। इन दोनों के शरीर के सारे अवयव ठीक हैं, नस-तन्तु भी ठीक हैं, इनका मस्तिष्क भी विकारग्रस्त नहीं है, फिर भी ये लड़कियों के स्कूल में घुस पड़े जब कि ये जानते थे कि लड़कियाँ दूसरे किस्म की बनी होती हैं। वहाँ जाकर ये चुप भी नहीं रहे, बल्कि हल्ला मचाने लगे। इससे यह नुक्सान हुआ कि अध्यापक के स्नायु-तन्तुओं को सितार की तरह चोट लगी, लड़कियों के मस्तिष्क पर मृदंग

के समान आघात पड़ा और पढ़ाई बन्द कर दी गई। इन दोनों व्यक्तियों की दुष्टता हमारे यहाँ की लड़कियों की सज्जनता से टकराने लगी। उसी तरह टकराने लगी जिस तरह ग्रह, नक्षत्र और तारे आपस में टकराने लगते हैं, जैसे उल्कापात हो जाता है और जैसे झरना पहाड़ पर चढ़ जाता है। फिर केवल इतनी ही बात नहीं, अगर दुष्टता सज्जनता से टकराकर ही रह जाती तब भी कोई बात नहीं थी। मगर यह मामला इतना संगीन है कि इन दोनों व्यक्तियों ने कानून से भी टक्कर मारी है। कानून इस टक्कर को सहन नहीं कर सकता। वह कानून इन दोनों व्यक्तियों को अवश्य ही दण्ड देगा, अवश्य ही दण्ड देगा।

इस तरह कहने के बाद उन्होंने दूसरे वकील से चोंच लड़ाना शुरू किया। दूसरे वकील ने चोंच लड़ाकर कहा—"अरे मेरे प्यारे दिलदार सदाबहार परम उदार जज साहब, आप बड़े विकट रूप से अच्छे हैं। आपके समस्त स्नायुतन्तु दुरुस्त हैं। आपकी आँखों में रेटीना है। उस रेटीना पर सम्मुखीन दृश्यों का फोकस पड़ता है। उस फोकस को सम्वादवाहक नलिकाएँ मस्तिष्क में पहुँचाती हैं और आपका मस्तिष्क निर्णय करता है। अब आप अपने फोकस से मिलाकर देखें कि क्या मेरे ये दोनों मुवक्किल अपराधी मालूम होते हैं? ये दोनों प्रेमिका की आँखों के समान निर्दोष दिखलाई दे रहे हैं। आपको विदित होना चाहिए कि ये लोग बहुत दूर से आए हैं। सामने एक मकान दिखलाई पड़ा। ये जानते नहीं थे कि यह मकान कैसा है। इसलिए वे मकान के अन्दर चले गए। इन्हें पता नहीं कि वह स्कूल है या क्या है। इसमें इन बेचारों का कोई दोष नहीं। निर्दोषिता को आप लोग किसी तरह भी दोष नहीं कह सकते। अगर आप ऐसा करें, तो मैं आपके मुँह पर टैनिक एसिड लगा दूँगा और मैं सलफ्यूरिक एसिड पीकर सो जाऊँगा। उसके बाद मेरी पत्नी पोटेशियम-साइनायड खा जायगी और बाल-बच्चे अनाथालय में भरती हो जायँगे। इसलिए आपको चाहिए कि मेरे मुवक्किलों को रिहा कर दें।"

जज साहब ने कहा—"अगर मैं सच्चा न्याय करूँ तब भी आप

मेरे फैसले के विरुद्ध ऊपर की अदालत में अपील कर सकते हैं।"

वकील साहब ने कहा—"हुजूर, ऊपर की अदालत में जाने के लिए बहुत सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। मेरे मुवक्किल बेचारे कमज़ोर हैं, ऊपर जाते-जाते थक जायँगे, इसलिए आप इन लोगों को यहीं से छोड़ दें। पुलिस अगर चाहेगी तो इन्हें फिर पकड़ लेगी।"

इतना कह लेने के बाद वकील साहब बैठ गए। जज साहब ने उचकते हुए पुकारा—"पेशकार!"

पेशकार ने भी जवाब में उतनी ही तेजी से पुकारा—"हुजूर!"

जज साहब ने उचकते हुए कहा—"पेशकार, अब जल्दी पेश करो।"

तब पेशकार साहब ने जज साहब के सामने इन दोनों मित्रों को पेश किया। जज साहब ने कहा—"बोलो, कि भगवान् को झूठ मानकर सब सच कहूँगा।"

समीर कुछ हिचकिचाया, लेकिन प्रभात ने बड़े ठाट के साथ कहा—"जी हाँ, भगवान् को झूठ मानकर सब सच कहूँगा।"

जज साहब ने पूछा—"बोलो, सत्य क्या है?"

समीर ने कहा—"जो है, वह सत्य है। जो समझ में नहीं आए वही सत्य है। सत्य की परिभाषा स्वयं सत्य है।"

जज साहब ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं-नहीं, यह कुछ समझ में नहीं आया। मेरे विचार से विज्ञान सत्य है।"

प्रभात ने उछलकर कहा—"जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। विज्ञान सत्य है, ज्ञान असत्य है।"

जज साहब ने प्रसन्न होकर पूछा—"किस तरह? उदाहरण देकर समझाओ।"

प्रभात ने कहा—"माई लार्ड, विज्ञान उसी तरह सत्य है जिस तरह आपका फैसला। हम लोग अपने ज्ञान के द्वारा उस स्कूल में घुस गए। यह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी, लेकिन आपका जो फैसला होगा वह सभी तरह से सत्य होगा। अगर आप

फाँसी दे दें तो हम लोगों को फाँसी हो जायगी। अगर आप जेल भेज दें तो हम लोग जेल चले जायँगे। अतएव मेरा कार्य ज्ञान और आपका फैसला विज्ञान, अर्थात् आपका फैसला ज्ञान का विज्ञान हुआ। हुआ या नहीं ?"

जज साहब ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार तुम ठीक कहते हो। अब एक बात बतलाओ—उलटा कैसे सीधा होता है ?"

प्रभात ने कहा—"महामान्यवर जज साहब, मेरा विचार इस विषय में एकदम मौलिक है। मेरे खयाल से न कुछ उलटा होता है और न सीधा; आदमी की खोपड़ी ही उलटी और सीधी हुआ करती है। अगर खोपड़ी उलटी हुई तो सारी चीज़ें सीधी मालूम होती हैं और अगर खोपड़ी सीधी हुई तो सारी चीज़ें उलटी मालूम होती हैं। इसलिए जब सीधी खोपड़ी उलटी हो जाती है तब ही उलटा भी सीधा हो जाता है।"

जज साहब ने प्रसन्नता से सिर हिलाते हुए कहा—"वाहवाह, अब उदाहरण देकर समझाओ।"

प्रभात ने उदाहरण देना शुरू किया—"आपकी आँख की रेटीना पर सारी चीजों का फोकस उलटा पड़ता है। मगर चूँकि आपकी खोपड़ी उलटी है इसलिए उस उलटे फोकस को आप अपनी खोपड़ी के अनुसार उलटकर सीधा देखते हैं। माई लार्ड, इसी प्रकार उलटा भी सीधा हो जाता है।"

प्रभात की बात से जज साहब उछल पड़े। बोले—"भाई वाह, क्या कहने हैं! जाओ, मैं तुम दोनों आदमियों को रिहा करता हूँ।"

: ३ :

उस दिन पार्क में वे दोनों मित्र बैठे हुए थे। सहसा एक आदमी ने आकर इन दोनों को प्रणाम किया। जब इन लोगों ने भी प्रणाम किया

तो उसने पुनः प्रणाम करके कहा—"मैं आप लोगों के पास आया हूँ। मुझे अपने लिए मित्र की आवश्यकता है।"

समीर ने कहा—"हम लोग परदेसी आदमी हैं। थोड़े दिन तक यहाँ हैं। फिर उसके बाद चले जायँगे। आपको क्या इस जगह मित्र नहीं मिलते ?"

उस आदमी ने कहा—"यहाँ सभी लोग फिज़िक्स, कैमिस्ट्री और बायोलॉजी के पीछे इतने परेशान रहा करते हैं कि मित्र मिल सकना कठिन हो जाता है।"

प्रभात ने पूछा—"भाई साहब, अगर मैं आपसे मित्रता करूँ तो आप मुझे क्या देंगे ?"

उस आदमी ने कहा—"मैं आपको फिज़िक्स, कैमिस्ट्री और बायोलॉजी दूँगा। आपका जितना जी चाहे यहाँ से ले जायँ।"

प्रभात ने प्रसन्नतापूर्वक उससे हाथ मिलाकर कहा—"वाहवाह, तब हम लोग आपस में मित्र हो गए। चलिए, आपके यहाँ चला जाय।"

दोनों मित्र उसके घर पहुँचे। वहाँ उसकी पत्नी ने उन लोगों को प्रणाम किया और उन्हें भीतर ले गई। टप्पा उसका नाम था और वह बराबर मुस्कराती रहती थी। टप्पा ने पूछा—"कहिए, मैं आप लोगों की क्या खातिरदारी करूँ ?"

उसके पति ने कहा—"प्रिये, इन लोगों को अपना गीत सुनाओ।"

टप्पा ने कहा—"प्रियतम, गीत सुनने के लिए तो चाहिए कि आसमान में बादल उमड़ रहे हों, घुमड़ रहे हों, पुरवैया बह रही हो, रह-रहकर कड़कड़ाती हुई बिजली चमक उठती हो, दिन का प्रकाश धुँधला पड़ गया हो। तब गीत सुनने में आनन्द आता है।"

पति ने कहा—"तो फिर वैसा ही कर दो।"

उसकी पत्नी उठी और बिजली का एक स्विच दबा दिया। बस, कमरे की रोशनी एकदम धुँधली हो गई। मालूम होने लगा जैसे कमरे के बाहर पानी बरस रहा हो। रह-रहकर बिजली के कड़कने की आवाज आ

रही थी।

प्रभात ने समीर के कान में कहा—"मालूम होता है जैसे बरसात आ गई है।"

समीर ने उसी तरह उसके कान में फुसफुसाकर कहा—"मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे सिनेमा देख रहा हूँ।"

इसी समय बाहर से पपीहा के बोलने की आवाज़ भी आने लगी।

इस बीच टप्पा ने उनके सामने एक ग्रामोफोन की मशीन रख दी। उस पर एक तवा चढ़ाया। गीत की आवाज़ आने लगी। टप्पा बैठी-बैठी मुँह से इस तरह पागुर करने लगी मानो वही गीत गा रही हो।

समीर ने उसके पति से पूछा—"यह किस तरह का गाना है? आपकी पत्नी तो गाती नहीं, वह तो केवल ग्रामोफोन बजा रही है।"

उसने कहा—"मित्र, मेरी पत्नी प्ले-बैक के कायदे से आपको गीत सुनाती है। वाह, क्या मज़ा है! विज्ञान से कितनी सुविधाएँ मिल गई हैं।"

समीर ने कहा—"आदमी को गाना भी नहीं पड़ता और गीत सुनने का पूरा मज़ा मिल जाता है।"

इधर प्रभात गीत में पूरी तरह मस्त था। वह उसकी स्त्री के सामने सिर हिला-हिलाकर वाह-वाह की धूम मचा रहा था। उसकी पत्नी भी आवेश में आ गई थी। प्रशंसा के मारे झूमती जाती थी और पागुर करती जा रही थी। उसके चेहरे पर ऐसा घोर भाव था मानो गीत गाने में उसे पूरी तरह परिश्रम करना पड़ रहा है; वह संकेत बतलाती थी, मुँह चलाती थी और झूम रही थी। आखिर किसी तरह गीत समाप्त हुआ और सभी चुप हो गए। प्रभात ने मानो मस्त होकर कहा—"वाह, हमने कभी अपने जीवन में ऐसा वैज्ञानिक गाना नहीं सुना था। एकदम बरसात का समा बँध गया। अब कोई दूसरा गाना सुनाइए।"

टप्पा ने कहा—"लीजिए, दूसरा गाना सुनिए। अब की आपको

वसन्त ऋतु का गीत सुनाती हूँ।"

वह उठ गई। पहले स्विच को बन्द कर दिया, फिर दूसरा स्विच दबाया। बस, सब वसन्त ऋतु के समान हो गया। कमरे में थोड़ा जाड़ा लगने लगा, थोड़ी गरम हवा वहने लगी। वहाँ तमाम आम की मंजरियों की सुगन्धि फैल गई। मालूम होने लगा कि बाहर कहीं कोकिला कूक रही है। टप्पा ने ग्रामोफोन पर तवा चढ़ा दिया और गीत की आवाज़ के साथ-साथ पागुर करने लगी। प्रभात फिर झूमने लगा और वाह-वाह करने लगा। जितना प्रभात झूमता था उतना ही टप्पा भी झूम रही थी। संगीत का पूरा आनन्द आ गया।

टप्पा के पति ने कहा—"विज्ञान के द्वारा संगीत कितना सुलभ हो गया है! आदमी को गाने के लिए मेहनत भी नहीं करनी पड़ती और प्ले-बैक से सारा काम चल जाता है।"

प्रभात तो अभी तक झूम ही रहा था। समीर ने केवल इतना ही कहा—"आश्चर्य है!"

टप्पा के पति ने पूछा—"क्यों मित्र, आपको केवल आश्चर्य ही हुआ, आनन्द नहीं आया?"

समीर ने कहा—"मुझे तो केवल वास्तविकता में आनन्द आता है।"

टप्पा के पति ने कहा—"वास्तविक क्या है, यह कह सकना तो बहुत ही कठिन है। आप ही बतलाइए कि क्या वास्तव है और क्या अवास्तव है? क्या अभी वास्तविक गाना नहीं हुआ? क्या अभी वसन्त की वास्तविक सुगन्धि नहीं उड़ रही है? क्या वह कोकिल की कूक भी अवास्तविक है?"

समीर ने कहा—"वास्तविक तो सब मालूम होता है, पर यह भी लगता है कि यहाँ वास्तविकता कुछ भी नहीं है।"

टप्पा ने कहा—"मालूम होता है कि आप फिलासफर हैं। मैं आपको जलपान कराऊँगी।"

समीर ने कहा—"मैं फिलासफर तो नहीं हूँ, मगर जलपान करने में कोई हर्ज मालूम नहीं होता।"

टप्पा ने हँसकर कहा—"मालूम होता है कि आपको भूख लग आई है। पूरा खाना ही चाहिए।"

समीर ने कहा—"अब आप जैसा समझिए।"

सचमुच उसे भूख लग आई थी। दोनों मित्र भोजन की आवश्यकता समझ रहे थे।

टप्पा भोजन के इन्तजाम में लग गई। इधर वे लोग अपने मित्र से बातचीत कर रहे थे। उस मित्र का नाम था समास। वह कहता था कि पहले किसी समय में हम लोगों के नक्षत्र में पृथ्वी से ही आदमी आये और इसे बसाया। मगर अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि इस नक्षत्र के लोग पृथ्वी पर पहले गये या पृथ्वी से ही लोग यहाँ पहले आये।

प्रभात ने कहा—"कोई हरज नहीं। इन बातों में क्या पड़ा है, चाहे यहाँ के लोग वहाँ पहुँचे हों या वहाँ के लोग पहले यहाँ पहुँचे हों।"

समास ने कहा—"वाह, इस बात का पता लगाना तो सबसे जरूरी है। बिना इस बात का पता लगाए काम किस तरह चल सकेगा? आखिर हम लोगों को यह भी सोचना है कि फिजिक्स, कैमिस्ट्री और बायोलॉजी यहाँ पृथ्वी से आई या यहाँ से पृथ्वी पर गई।"

इसी समय टप्पा ने आकर कहा—"चलिए, भोजन तैयार है।"

दोनों अपने नये मित्र के साथ एक कमरे में पहुँचे। एक बड़ा सा टेबल पड़ा हुआ था और उसके चारों ओर कुरसियाँ लगी हुई थीं। दोनों मित्र लालसा के साथ बैठ गए कि आज भर-पेट भोजन खाना है। इधर समास अपना सिर झुकाकर इसी बात को सोचने में तल्लीन था कि यहाँ के आदमी पहले पृथ्वी पर गए होंगे या पृथ्वी के आदमी यहाँ आए होंगे। टप्पा आकर सभी लोगों के सामने एक-से-एक अच्छी



ग्रौर रंगीन प्लेटों को सजाने लगी। प्रभात ने प्रसन्न होकर पूछा—
"ग्राज क्या खाना बना है ?"

"वही जो हमेशा बना करता है," टप्पा ने कहा ग्रौर तुरत एक डिब्बे को खोलकर उसमें से एक लम्बी-सी सुई निकाल ली। जब तक प्रभात सँभल सके तब तक उसने उसकी बाँह खोलकर सुई घुसेड़ ही दी। प्रभात ने सिसकारी भरते हुए कहा—"बापरे, वाह-वाह, क्या खूब खाना बना है !"

टप्पा ने कहा—"हमारे यहाँ इसी तरह का स्वादिष्ट भोजन बना करता है। ग्रापको कितना स्वादिष्ट मालूम हुग्रा ?"

प्रभात ने ग्रपनी बाँह को पकड़कर कहा—"ग्रोह, बहुत ही स्वादिष्ट।"

समीर ने पूछा—"क्या ग्राप लोग इन्जेक्शन से ही भोजन का काम चला लेते हैं ?"

समास ने उत्तर दिया—"और नहीं तो क्या ! कौन घण्टे-भर तक जानवरों की तरह मुँह चलाता रहे ? सुई लगाई और पेट भर गया। इससे अधिक की जरूरत ही क्या है ? यह देखिए, प्रभातजी को डकार आ रही है। आप भी भोजन कर लीजिए। हाँ, ज़रा बाँह खोलिए। टप्पा, आपको भोजन कराओ।"

समीर ने प्लेटों को दिखलाते हुए कहा—"मैंने तो समझा था कि इन प्लेटों पर खाना परोसा जायगा।"

समास ने कहा—"किसी समय प्लेटों पर परसकर लोग भोजन किया करते थे, लेकिन अब शताब्दियों से इसका दस्तूर उठ गया है। कम अनाज में ही सभी लोगों को काम चलाना पड़ता है। इसके अलावा मुँह और दाँतों की रक्षा के लिए भी आजकल के आदमी सुई के द्वारा ही भोजन करते हैं।"

तब तक टप्पा ने समीर की बाँह खोल दी और उसमें सुई चुभ गई। दूसरे ही क्षण समीर का मुँह स्वाद से भर गया। पेट में इस तरह की गैस पैदा हो गई कि बार-बार डकार आने लगे। उसने कहा—"मेरा तो पेट बिलकुल भर गया है। अब मैं ज़रा लेटना चाहता हूँ।"

टप्पा ने कहा—"लेट जाइए।"

समीर उसी कुरसी पर लेट गया। उसका लेटना था कि किसी बिजली के झटके के कारण वह उस कुरसी से किसी पलंग के ऊपर उछल गया। बड़ा गुलगुला पलंग था। वह उस पलंग पर लेटा हुआ सोचने लगा कि विज्ञान ने जीवन की समस्या को कितना आसान कर दिया है। न काम करने की जरूरत है और न हाथ-पैर हिलाने की। जो चाहिए, तुरत हाजिर है। विज्ञान के इस राज्य में यहाँ के मनुष्य कितने सुखी होंगे ! काश, मैं किसी तरह यहाँ के लोगों का अन्तःकरण देख सकता।....मगर सुखी तो यहाँ सभी होंगे ही।....

: ४ :

दो-तीन दिन के बाद की बात है।

समास उन लोगों को अपने साथ एक पार्क में ले गया। वहाँ दोनों मित्र फूलों की बहार देखने लगे। इसी समय समास ने समीर से पूछा—"क्यों मित्र, आत्म-हत्या करने के लिए कौनसी जगह अच्छी होती है?"

समीर ने कहा—"मैं ठीक-ठीक आपको बतला नहीं सकता कि आत्म-हत्या के लिए कौनसी जगह अच्छी होती है। मैंने कभी आत्म-हत्या का अनुभव किया नहीं है। एक बार मैं सोच रहा था कि समुद्र के जल में आत्म-हत्या करने से सुख मिलता है।"

समास ने कहा—"दोस्त, तुम चाहे जो कहो, लेकिन मेरे विचार से आत्म-हत्या करने के लिए पार्क ही सबसे अच्छी जगह है। चारों ओर फूलों की बहार। वनस्पति-विज्ञान के प्रताप से आम के पेड़ में कमल फूला हुआ है, चारों ओर भौंरे गुञ्जार रहे हैं, गुलाब के पेड़ में आम फला हुआ है। यह देख-देखकर किसका मन सुखी नहीं होगा? बस, आत्म-हत्या के लिए अगर कोई स्थान है तो केवल पार्क। मैं आज यहीं बैठकर आत्म-हत्या करना चाहता हूँ।"

समीर ने घबराकर पूछा—"क्यों? तुम आत्म-हत्या क्यों करना चाहते हो?"

समास ने रोते हुए कहा—"प्यारे मित्र, संसार में मेरे समान दुखी व्यक्ति कहीं नहीं होगा। मेरा जीवन दुख से भरा हुआ है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आत्म-हत्या करके आज इस संसार से कूच कर जाऊँ। बस, सदा-सर्वदा के लिए दुखों का अन्त हो जायगा।"

यह कहते हुए उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। प्रभात उन आँसुओं को अपने रूमाल से पोंछने लगा।

समास ने सिसकते हुए कहा—"प्यारे मित्र, यह कितने दुख की बात है!"

प्रभात ने पूछा—"कौनसी बात ?"

समास ने रोते हुए कहा—"आज टप्पा ने मेरी ओर मुस्कराकर देखा ही नहीं। यह कितने दुख की बात है !....आह, अब मैं इस जीवन को रखकर क्या करूँगा ?"

उसने बड़े जोर से दर्द-भरी आह खींची और सिसक-सिसककर रोने लगा।

समीर ने समझाते हुए कहा—"कोई हर्ज नहीं है मित्र, टप्पा ने तुम्हारी ओर मुस्कराकर नहीं देखा तो इसमें क्या हर्ज है। मैं तुम्हारी ओर मुस्कराकर देखता हूँ। वह मित्र ही क्या जो मित्र के दुख के समय काम न आए !"

समास ने रोते हुए कहा—"नहीं मित्र, तुम्हारे मुस्कराकर देखने से भी मेरे दिल की कसक पूरी नहीं होगी। अब तो मुझे आत्म-हत्या करके मर ही जाना है।"

यह कहकर उसने अपनी जेब से पिस्तौल निकाली और अपनी बाईं कनपटी से सटाकर पिस्तौल का फायर कर ही दिया। उसके बाद वह तनिक देर तक लड़खड़ाता रहा, फिर मरकर गिर पड़ा।

दोनों मित्रों के होश-हवास गुम थे। क्या करें, क्या न करें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जी चाहता था कि भाग जायँ, मगर भागें भी तो कहाँ भागें, किधर भागें ? फिर भागकर जायँगे कहाँ ? नतीजा यह हुआ कि प्रभात उस लाश के सिरहाने बैठकर सिसकने लगा और समीर पैरों के पास बैठकर आँसू पोंछने लगा।

इसी समय एक समाचारपत्र बेचने वाला वहाँ आकर चिल्लाने लगा—"पार्क में आत्म-हत्या हो गई; पार्क में खून का फव्वारा बह गया; सिर्फ दो आने में नया समाचारपत्र !"

प्रभात ने उस समाचारपत्र की एक प्रति खरीद ली, लेकिन वहाँ की लिपि में छपा होने के कारण वह उस समाचारपत्र को पढ़ नहीं सका। लेकिन उसने देखा कि उन लोगों का वही फोटो छपा हुआ है।

समास की लाश उसी जगह पड़ी है और ये दोनों सिर और पैरों के पास बैठे हुए सिसक रहे हैं। प्रभात ने कहा—"वाह, इधर इस बेचारे की जान निकल रही थी और उधर फोटो के साथ समाचारपत्र छप रहा था। वाह, विज्ञान की कितनी उन्नति हो चुकी है!"

सहसा उसने एक प्रकार के घण्टे की आवाज सुनी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि कहीं आग लग गई है और फायर-ब्रिगेड की गाड़ी उस आग को बुझाने के लिए जा रही है। मगर उन लोगों के आश्चर्य का अन्त न रहा जब उन लोगों ने देखा कि वह गाड़ी आकर वहीं रुक गई। उस गाड़ी के भीतर से दो आदमी लपककर निकले और फुर्ती से उस लाश को उठा लिया। समीर ने पूछा—"इसे कहाँ ले जाते हो?"

उन लोगों ने जवाब दिया—"इस लाश को हम लोग अस्पताल ले जा रहे हैं। वहाँ इसकी दवा की जायगी। अगर जीने के लायक होगा तो जी जायगा।"

प्रभात ने कहा—" ठहरो, मैं भी चलता हूँ।"

और वे दोनों मित्र भी उसी गाड़ी में घुसकर बैठ गए।

: ५ :

डॉक्टर ने समास की लाश की अच्छी तरह परीक्षा की। उसके बाद उसने उसकी बाईं कनपटी के गोली वाले घाव को अच्छी तरह देख-भालकर समीर से कहा—"तुम लोग इसका सिर अच्छी तरह पकड़े रहना।"

उसके बाद उसने अपनी जेब से पिस्तौल निकाली और दाहिनी कनपटी में हिसाब लगाकर उसी जगह गोली छोड़ी जहाँ बाईं ओर समास ने गोली मारी थी। पिस्तौल की आवाज के साथ-ही-साथ उसकी खोपड़ी के भीतर से गोली निकली और जाकर छत पर टन्न-से टकरा गई। उसके बाद डॉक्टर उसकी लाश को दूसरे कमरे में ले गया, वहाँ उसके घाव में मलहम लगा दिया और एक पलंग पर

सुलाकर समीर के पास चला आया।

समीर ने पूछा—"कहिए डॉक्टर साहब, मेरे मित्र की लाश का क्या हुआ?"

डॉक्टर ने कहा—"मैंने तो उसे जिन्दादिल मरहम लगा दिया है। अब वह सो रहा है। कल सवेरे तक वह बिलकुल ठीक हो जायगा।"

समीर ने डॉक्टर की पीठ ठोककर कहा—"वाह डॉक्टर साहब, तुमने मेरे मित्र को जिन्दा कर दिया। वाह जी, अजी वाह जी डाक्टर साहब!"

डॉक्टर ने पूछा—"मगर यह तो बतलाओ कि इस बेचारे की यह हालत कैसे हुई?"

प्रभात ने कहा—"क्या बतलाऊँ डॉक्टर साहब, आत्म-हत्या करने से इस बेचारे की यह हालत हो गई। इसी से कहा गया है कि आदमी को आत्म-हत्या नहीं करनी चाहिए। आत्म-हत्या करने से बेचारे को कितनी तकलीफ हुई। ओह!"

डॉक्टर ने पूछा—"मगर इस आदमी ने आत्म-हत्या की तो क्यों की? इसका कारण क्या था?"

समीर ने कहा—"क्या बतलाऊँ डॉक्टर साहब, इसकी आत्म-हत्या का कारण बड़ा भयंकर था। इसकी स्त्री ने आज इसकी ओर मुस्कराकर नहीं देखा। बस इसने उसी दुख से अधीर होकर आत्म-हत्या कर ली। ऐसी ट्रेजेडी न कहीं देखी थी और न सुनी थी।"

डॉक्टर ने कहा—"जानकारी न होने के कारण न जाने कितनी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। अगर इसकी स्त्री को 'प्रेम का सिरका' पिला दिया जाता तो फिर वह बराबर इसकी ओर प्रेम-भरी मुस्कान के साथ देखा करती।"

समीर ने कहा—"प्रेम का सिरका! यह कहाँ मिलता है?"

डॉक्टर ने कहा—"वही तो मैं भी कहता हूँ कि जानकारी न होने के कारण संसार में न जाने कितनी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। प्रेम का

सिरका प्रेम के डॉक्टर के पास मिलता है। चीज़ अच्छी है। आदमी को एक बूँद पिला देने से वह काम करने लगता है।"

समीर ने पूछा—"एक बूँद से ही पूरा प्रेम हो जायगा ?"

डॉक्टर ने कहा—"प्रेम तो आधी बूँद से ही हो जायगा, लेकिन समस्त जीवन-भर प्रेम रखने के लिए एक बूँद पिला दीजिए। वह बराबर काम करता रहेगा।"

समीर ने कहा—"मैं आज ही प्रेम के डॉक्टर के यहाँ जाकर प्रेम का सिरका खरीद लेता हूँ।"

डॉक्टर ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"जरूर खरीद लो !"

और वह दूसरे मरीज़ को देखने के लिए चला गया।

: ६ :

प्रेम के डॉक्टर की दुकान भी बड़ी विचित्र थी। वहाँ तरह-तरह के प्रेम के मरीज़ थे। कोई बैठकर लम्बी साँस ले रहा था, कोई लेटकर रो रहा था, कोई तरह-तरह के दोहे और चौपाइयाँ बना रहा था। कोई नीचे सिर करके बैठा हुआ था, कोई अपना सिर आसमान की ओर ऊपर करके अन्तरिक्ष में कुछ देखने की कोशिश कर रहा था। कोई ऐसा लगता था कि अब उसकी जान न बचेगी, वह फौरन ही मर जायगा। इसमें पुरुष थे और स्त्रियाँ भी थीं।

जब वे लोग डॉक्टर के पास पहुँचे तो डॉक्टर ने पूछा—"तुम किससे प्रेम करते हो ? इससे कहाँ पर दर्द मालूम होता है ?"

समीर ने कहा—"मैं तो यहाँ किसी से प्रेम नहीं करता। मुझे दो-चार औंस प्रेम का सिरका चाहिए।"

डॉक्टर ने पूछा—"किस तरह का सिरका लोगे; ठण्डा या गरम ?"

समीर ने कहा—"ठण्डा और गरम दोनों मिलाकर बीस औंस दे दीजिए।"

डॉक्टर ने घबराकर पूछा—"बीस औंस सिरके का क्या करोगे ?

क्या मिलिटरी के पूरे डिवीजन से प्रेम करना है ?"

प्रभात ने कहा—"मिलिटरी की बात नहीं है। बात यह है कि ऐसी अच्छी चीज़ हम लोग अपने पास हमेशा के लिए रखना चाहते हैं। न जाने कब काम दे जाय।"

डॉक्टर ने कुछ सोचते हुए कहा—"रखने में तो कोई हरज नहीं, लेकिन एक बूँद सिरका से ही तो काम हो जाता है। रखता है तो रखने के लिए एक औंस बहुत होगा। शताब्दियों तक वह काम देता रहेगा। तुम्हारे बाल-बच्चे, अड़ोसी-पड़ोसी सब उसी एक औंस से लाभ उठा लेंगे। एक औंस भी बहुत है।"

समीर ने कहा—"अब चाहे जो हो, हमें तो बस बीस औंस चाहिए। ठण्डा और गरम दोनों।"

डॉक्टर ने पुरजा काटा और कम्पाउन्डर ने दवा दे दी। प्रभात चाहता था कि ज़रा चखकर इस दवा को देख लें कि इस प्रेम के सिरके का स्वाद किस तरह का होता है। मगर समीर इसके विरुद्ध था। उसका कहना था कि स्वयं दवा खाने के बाद अगर तुम स्वयं अपने-आपसे प्रेम करने लग गए तो वह बहुत बुरा हो जायगा। इसी तरह की बातचीत करते हुए वे लोग समास के घर पर पहुँच गए। समास अभी तक अस्पताल से नहीं आया था। टप्पा देवी चुपचाप बैठी हुई थीं। जब ये दोनों आए तो उसने मुस्कराकर इन दोनों की ओर देखा। समीर ने कहा—"टप्पा देवी, आज मैं एक नये किस्म का सिरका आपको पिलाऊँगा।"

टप्पा देवी ने कहा—"देखूँ, कैसा सिरका है आपका!" यह कहकर उन्होंने अपनी जीभ काली माई की तरह निकाल दी। समीर ने उनकी जीभ पर एक बूँद सिरका टपकाया और पास ही बैठकर इधर-उधर की गप्पें करने लगा।

सहसा इसी समय अस्पताल से निकलकर समास आ पहुँचा। उसने टप्पा की ओर विरक्ति से देखा और टप्पा ने उसकी ओर अनुरक्ति से




देखा। इस अनुरक्ति-विरक्ति को देखकर ये दोनों मित्र समझ नहीं सके कि अब क्या होने वाला है। सहसा टप्पा मुँह से मुस्कराने लगी और आँखों से रोने लगी। इसी तरह हँसती-रोती हुई वह बोल उठी—"मेरे प्राणेश्वर, प्रियतम, तुम कहाँ चले गए थे? देखो, मैं तुम्हारे लिए किस तरह व्यग्र हो रही हूँ।"

समास ने कहा—"कुछ नहीं, कोई बात नहीं। यों ही मैं मर गया था और मरकर अस्पताल चला गया था।"

टप्पा तड़प उठी। कहने लगी—"तुम मर क्यों गए? क्यों मरकर अस्पताल चले गए? प्यारे, तुम मरो मत। तुम मरकर अस्पताल मत जाओ। देखो, मैं तुम्हारे लिए किस प्रकार व्यग्र हूँ, बेचैन हूँ। प्यारे, तुम यहाँ से कहीं मत जाओ।"

टप्पा एकाएक समास से लिपट गई और उसे चूम-चूमकर परेशान कर दिया।

समीर ने प्रभात के कान में कहा—"मित्र, अब शीघ्र ही यहाँ का दृश्य अश्लील हो जायगा। अश्लीलता से मुझे घृणा है। इसलिए अब उचित यही है कि दृश्य के अश्लील होने से पहले ही हम लोग चुप-चाप यहाँ से खिसक जाएँ।"

प्रभात ने उसी प्रकार समीर के कान में फुसफुसाते हुए कहा—"मगर मुझे अश्लीलता से घृणा नहीं है। मैं उसे कला का एक अङ्ग मानता हूँ।"

समीर ने फिर प्रभात के कान में कहा—"अरे मित्र, तुम मेरे साथ बाहर चलो। मैं तुमसे रहस्य की एक जरूरी बात कहना चाहता हूँ।"

## : ७ :

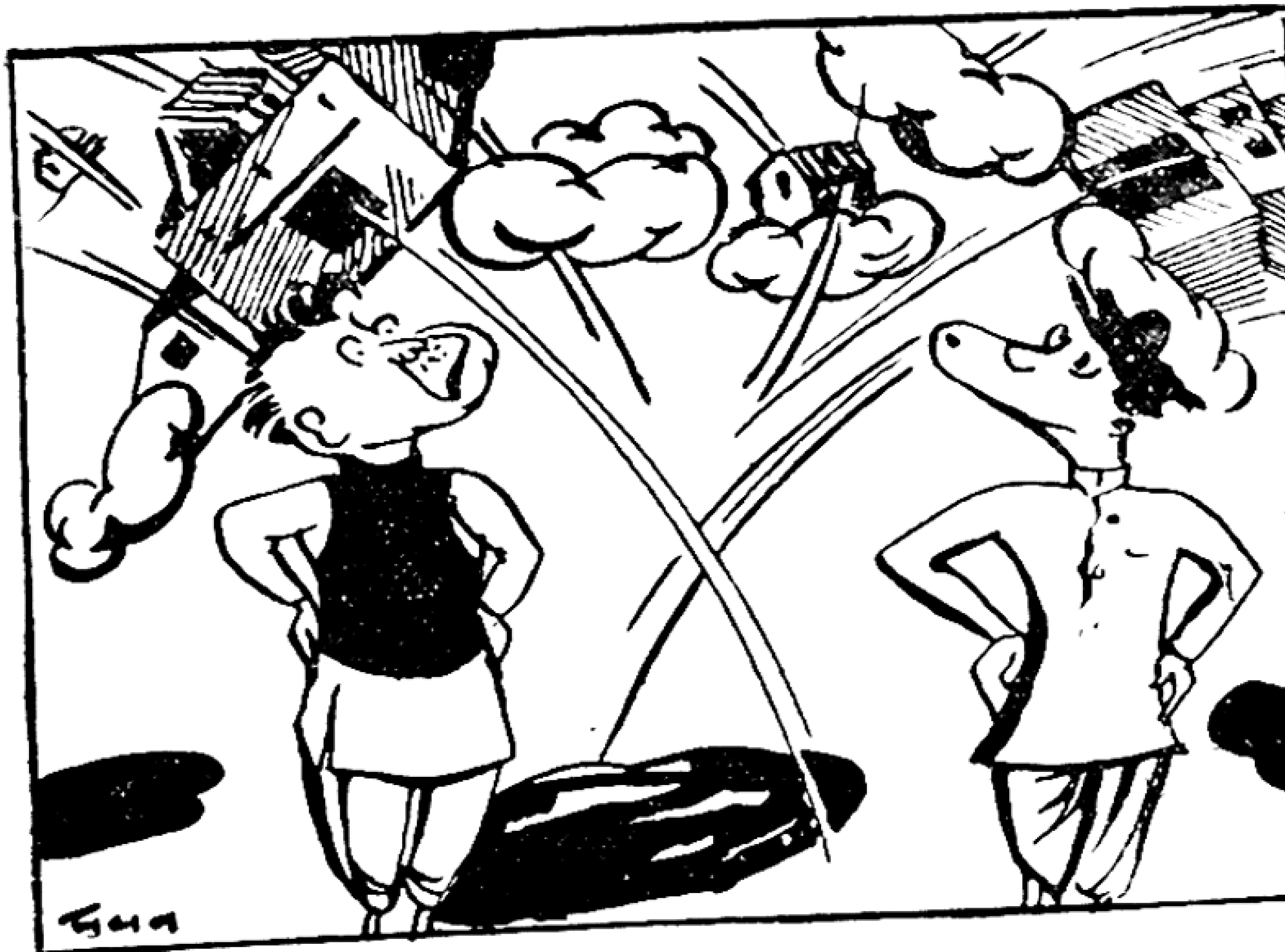
चलते हुए वे लोग बहुत दूर निकल गए थे। आखिर प्रभात ने झल्ला-कर कहा—"भई, कहो न, आखिर तुम क्या कहना चाहते हो? तीन मील से खींचते हुए ला रहे हो और कुछ कहते भी नहीं।"

समीर ने कहा—"बस, एक फर्लांग और चले चलो। जो कहना होगा वहीं कह दूँगा।"

एक फर्लांग आगे बढ़ने के बाद प्रभात ने कहा—"कहो!"

समीर अपना सिर खुजलाता हुआ कहने लगा—"देखो यार, जो बात मैं तुससे कहना चाहता था वह यहाँ तक आते-आते भूल ही गया, बिलकुल भूल गया।"

इस बात के जवाब में प्रभात कुछ कहने जा ही रहा था कि एक ओर से एक भयानक-सी आवाज़ आई और कुछ लोग सामने से चिल्लाते हुए भाग निकले। दोनों मित्र इधर-उधर देखने लगे कि बात क्या है। इतने में दूर से किसी बम के फटने की आवाज़ आई। दोनों घबराकर भागे। एक आदमी से भागते-भागते पूछने लगे कि बात क्या है? चारों ओर ऐसी भगदड़ क्यों मची है? जवाब मिला कि जान बचाकर कहीं



छिप जाओ। स्त्री और पुरुष का दंगा शुरू हो गया है। यह कहता हुआ वह आदमी पास के मकान में जाकर घुस गया। ये लोग भी उसके पीछे दौड़कर उसी मकान में जाने लगे कि इसी समय वह मकान वायु-यान की तरह सर्र से ऊपर आसमान में उड़ गया। उन लोगों ने देखा कि इसी तरह और भी अनेक मकान आसमान में उड़ रहे हैं। उन लोगों ने चाहा कि एक दूसरे मकान के भीतर जाकर शरण लें, लेकिन वह दूसरा मकान भी तब तक जमीन के भीतर घुसकर गायब हो गया और वहाँ केवल एक गढ़ा-सा नजर आने लगा। समीर ने तारीफ करते हुए कहा—"भई वाह, मकान हो तो ऐसा। चाहे वह जमीन के भीतर घुसकर गायब हो जाय या फिर एकदम आसमान में ही उड़ जाय। एक ही साथ पूरे मकान के लोगों की रक्षा हो जाती है।"

प्रभात ने कहा—"अब हम लोगों को भी इंजीनियर बुलाकर इसी तरह का मकान बनवाना पड़ेगा।"

समीर ने कहा—"मकान तो पीछे बनवाना। पहले जान बचाने की फिक्र करो।"

इसी समय स्त्रियों की दौड़ती एक सेना वहाँ आकर पहुँच गई। उन स्त्रियों ने चारों ओर से उन दोनों को घेर लिया और कोमल स्वर में कड़ककर बोलीं—"पामर, अब तुम लोग गिरफ्तार हो। अब तुम लोगों से नारी जाति के विद्वेष का बदला लिया जायगा।"

दोनों मित्रों का मुँह स्याह हो आया। प्रभात की आँखों में आँसू छलक पड़े। उसने रोते हुए कहा—"हम लोगों का कोई अपराध नहीं।"

उस स्त्री ने उसी प्रकार कोमल स्वर में कड़कते हुए कहा—"अपराध क्यों नहीं है? तुम लोगों ने सारी स्त्री जाति को नीचा बनाकर क्यों रखा? सदा उनकी अवहेलना की। उन्हें कोई अधिकार नहीं दिया। आज भी तुम स्त्रियों का सम्मान नहीं करते।"

प्रभात ने कहा—"हम लोग तो आजकल स्त्रियों को अपनी बराबरी का अधिकार देते हैं।"

उस स्त्री ने फिर कोमल कड़क स्वर में कहा—"तुम लोग स्त्रियों को कभी सम्मान नहीं देते। उनका चित्र विज्ञापन के लिए छापते हो और कहते हो कि हम स्त्रियों का सम्मान करते हैं। उन्हें संगठित होने नहीं देते और कहते हो कि हम स्त्रियों का सम्मान करते हैं। तुम्हारी बातें नहीं सुनी जायँगी। चलो देवियो, इन शत्रुओं को कारागार में बन्दी बनाकर रखो।"

## : ८ :

"बन्दी, क्या हाल है?"

रह-रहकर पहरावाली इसी तरह पूछ लेती थी। ये दोनों कभी कह देते थे कि अच्छा हाल है और कभी जी में आता था तो कह देते थे कि बुरा हाल है। लेकिन दोनों बातों में कोई फरक नहीं पड़ता था। अच्छा

हाल सुनकर भी वह पहरावाली चुप रह जाती थी और बुरा हाल सुनकर भी वह उसी तरह की चुप्पी साध लेती थी।

उस दिन प्रभात ने उससे पूछा—"देवीजी, मेरी क्या गति होगी?"

उसने कहा—"तुम्हारी लाश पर कारबोलिक एसिड छिड़ककर हम लोग मैदान में छोड़ देंगी जिससे मक्खियाँ न लगने पावें।"

प्रभात ने कहा—"अगर मैं आपसे प्रेम भी करूँ तब भी आप मेरी लाश पर कारबोलिक एसिड छिड़क देंगी?"

"प्रेम?" वह स्त्री हँसने लगी।

प्रभात ने कहा—"अगर आप मेरे हाथ से एक गिलास पानी पी लें तो मैं आपसे प्रेम करने लगूँगा।"

उस स्त्री ने कहा—"पानी तो मैं पी लूँगी, मगर जंगली पुरुषों से मैं कदापि प्रेम नहीं कर सकती।"

"खैर, कोई बात नहीं; प्रेम मत करना। बस पानी पी लो," प्रभात ने कहा।

"अच्छी बात है, लाओ पानी!" वह सन्तरिनी मटकती हुई आ गई। बड़ा रोबीला वेश था। सिर के केशपाश लम्बे-लम्बे, बड़ी-बड़ी आँखें, गुलाबी रंग। हाथ में बर्छा, कमर मे तलवार और पीठ पर बन्दूक लगाये हुए वह ऐसी मालूम होती थी जैसे वह वीरता और कोमलता का बोझ ढो रही हो। वह प्रभात की बेवकूफी पर हँस रही थी। यह भलामानस कहता है कि मैं पानी पिलाकर आपसे प्रेम करूँगा। प्रेम? छीः! ........उसने प्रभात के हाथ से गिलास ले लिया और पानी पी गई। एकाएक मालूम हुआ कि जैसे मस्तिष्क में कोई गुलाबी छटा छा गई हो, जैसे कुछ ठण्डा और कुछ गरम लग रहा हो। कुछ मस्ती है, कुछ कसक है। कुछ ऐसा है, कुछ वैसा है, कुछ इधर-उधर है। कुछ वेदना है, कुछ आनन्द है। कुछ अर्रर्र मालूम होता है। वह चौंक उठी। बोली—"मैं प्रेम करती हूँ। बन्दी, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

प्रभात ने देखा कि यहाँ प्रेम का सिरका पूरी तरह काम कर गया।



वह अकड़ गया। डाँटकर बोला—"तुम मुझसे प्रेम करती हो?"

"हाँ बन्दी, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

प्रभात ने पूरी तरह अकड़ते हुए कहा—"अच्छी बात है। अगर तुम मुझसे प्रेम करती हो तो कान पकड़कर बीस बार उठ-बैठकर दिखलाओ।"

वह तुरत कान पकड़कर उठने और बैठने लगी। इस तरह उठने और बैठने में रह-रहकर उसकी कमर लचक जाया करती थी। बीस बार उठ-बैठ करके वह चुप खड़ी हो गई और प्रेमातुर दृष्टि से प्रभात की ओर देखने लगी। उसे अपनी ओर देखते पाकर प्रभात ने जैसे गुस्से से पूछा—"मेरी ओर इस तरह क्या देख रही हो?"

उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"बन्दी, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। प्रेम करती हूँ।"

"तुम मुझसे प्रेम करती हो न?"

"अवश्य।"

"मैं जो कहूँगा, करोगी ?"

"अवश्य।"

"तो लो, इस बोतल को ले जाओ। जहाँ से सबके लिए पानी जाया करता है उस टंकी में जाकर इसका सिरका डाल दो।"

"वह टंकी तो बहुत ऊँचे पर है।"

"ठीक है, इसीलिए तो दोहा कहा गया है कि 'चढ़े तो चाखे प्रेम-रस, गिरे तो चकनाचूर'।"

"तुम्हीं वहाँ चले जाओ।"

"अच्छी बात है; तो फाटक को खुला छोड़ दो। मैं रात के समय चला जाऊँगा।"

रात के समय प्रभात को खूब खुलकर नींद आई। जी में इतमीनान हो गया था और वह खर्राटे लेता हुआ सो रहा था। समीर ने उसे जगाया और कहा—"यार, रात अब घनी हो चुकी। जाकर टंकी में प्रेम का सिरका गिरा दो।"

प्रभात ने करवट बदलते हुए कहा—"ऊँह, जाकर तुम्हीं उसे डाल आओ।"

: ९ :

चारों ओर एक अजीब बहार छाई हुई थी। सभी ओर से घेरकर स्त्रियाँ समीर को अपना प्रेम जता रही थीं। वह एक मनोहर सिंहासन पर बैठा हुआ सब कुछ देख रहा था। हर ओर वैज्ञानिक नाच और प्ले-बैक का संगीत चल रहा था। हर तरफ फूल बिखेरे जा रहे थे।.........

एक ओर खड़ी होकर एक बुढ़िया न जाने कब से अपना भाषण दे रही थी। अब उसका भाषण समाप्त हो रहा था। वह कह रही थी—"जब इस महान् हृदयहारी पुरुष पर मैं निन्यानवे साल की होकर भी अनुरक्त हो गई तो फिर दूसरी स्त्रियों का तो कहना ही क्या। हम इस महान्

व्यक्ति को समस्त स्त्रियों की ओर से 'प्रियतम' की उपाधि दे रही हैं। इतना बड़ा डिप्लोमा आज तक किसी को नहीं दिया गया था। इन्होंने स्त्रियों और पुरुषों में सन्धि करा दी। संसार से प्रेम मिटा जा रहा था उसे चालू कर दिया। प्यारी बहनो, एक बार बोलो—'प्रियतम की जय!' "

चारों दिशाओं से कोकिलकण्ठी गगनभेदी स्वर गूंज उठा—"प्रियतम की जय!"

उसके बाद समीर भाषण देने के लिए उठा............

# उपसंहार

जब समीर भाषण देने के लिए उठने लगा तो उसे उठने में बड़ी बाधा मालूम हुई। उठते समय उसे बहुत पराक्रम करना पड़ रहा था। उसे लग रहा था कि मानो उसके सामने का नृत्य और संगीत सब कुछ अन्धकार में खोता जा रहा है। मगर फिर भी वह जोर लगाता हुआ उठा जा रहा था। जब वह पूरी तरह उठ गया तो उसने आँख खोलकर देखा कि वह अपने ही पलंग पर उठकर खड़ा हो गया है। न कोई वैज्ञानिक ग्रह है और न कहीं प्रेम का सिरका ही है। उसने देखा कि उसका मित्र प्रभात एक कुरसी पर बैठा हुआ उसे इस तरह उठते देखकर आश्चर्य से चकित हुआ जा रहा है। प्रभात ने कहा—"दोस्त, तुम भी खूब सोते हो।"

समीर घबराकर पलंग पर बैठ गया और अपना माथा ठोकने लगा। अच्छी तरह माथा ठोककर उसने पूछा—"क्यों प्रभात, तुम भी कुछ सपना देख रहे थे?"

"क्यों, मैं तो अपने घर में पड़ा-पड़ा एक सपना देख रहा था। मगर जाने दो·······वह सपना तुम्हें सुनाने के लायक नहीं है।"

समीर ने हँसते हुए कहा—"मुझे तो ऐसा मालूम हुआ मानो हम-तुम दोनों मिलकर एक ही सपना देख रहे हैं।····ओह, बड़ा विचित्र वह

सपना था।"

इसी समय शारदा ने उस कमरे में प्रवेश किया। उसका चेहरा गम्भीर था। उसे देखते ही प्रभात एकाएक चौंक उठा। कभी वह प्रभात की ओर देखता, कभी शारदा की ओर। वह मन-ही-मन लज्जित हो रहा था। उसके बाद उसने सिर हिलाते हुए शारदा से कहा—"हाँ-हाँ, तुमने जो मुझे कहा था वह मुझे याद है। मैं उस बात को कभी भूल नहीं सकता। वह बात मुझे अभी तक अच्छी तरह याद है।"

शारदा ने घबराकर पूछा—"कौनसी बात?"

उसे स्वयं याद नहीं आ रहा था कि उसने समीर से कौनसी ऐसी बात कही थी जो उसे याद है।

समीर ने उसी तरह सिर हिलाते हुए कहा—"वाह! क्या तुम्हें याद नहीं? मालूम होता है कि आजकल तुम भूल जाया करती हो। कल तुमने ही कहा था कि प्रभात से उसकी जन्मपत्री माँगना। सुलेखा की जन्मपत्री से मिलाकर उसे देखना है।"

शारदा ने बात सँभाल ली। बोली—"हाँ, तुमसे कहा तो था। क्यों प्रभात, लाए हो अपनी जन्मपत्री?"

प्रभात ने अपनी जेब से जन्मपत्री निकालते हुए कहा—"मैं तो यहाँ बराबर अपनी जन्मपत्री लेकर आया करता हूँ। न जाने आप लोग कब किस समय माँग लें।"

शारदा उसके हाथ से जन्मपत्री लेकर हँसती हुई कहने लगी—"चलो, हमारी एक बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई।"

समीर ने कहा—"पण्डितजी से कहना कि जन्मपत्री को ठीक से मिलाकर देखें।"

शारदा ने हँसकर कहा—"जन्मपत्री मिल ही जायगी। इसमें चिंता की कौनसी बात है?"

समीर ने कहा—"तो विवाह भी हो ही जायगा। इसमें भी शंका की कोई बात नहीं है।"

प्रभात चुपचाप बैठा हुआ था। उसका चेहरा बेवकूफ की तरह हो आया था। उसके जी में बार-बार आता था कि उठकर यहाँ से चला जाय।

शारदा ने मुस्कराकर एक बार तिरछी नजरों से प्रभात की ओर देखा और बोली—"चलूँ जरा, सुलेखा को यह समाचार सुना दूँ।"

और वह चलने लगी। सहसा प्रभात ने उसकी आँचल का छोर पकड़ लिया और गिड़गिड़ाकर बोला—"ए जी, देखिए, मुझे बड़ी लाज आती है। मुझे यहाँ से जाने दीजिए तब किसी को समाचार सुनाइएगा।"